131

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

न्याय प्रशासन में विधिक वृत्ति की

भूमिका

पर

एक सौ इकतीसवीं रिपोर्ट

डी० ए० देसाई
अध्यक्ष

विधि आयोग,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली ।

31 अगस्त, 1988

अ० शा० सं० 6(2)(6) 87-वि० आ० (एल०एस०)

श्री बी० शंकरानंद,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली ।

प्रिय श्री शंकरानंद,

यह कार्य का समापन है। आपके पूर्ववर्ती तत्समय विधि मंत्री श्री ए० के० सेन ने विधि आयोग को भारत सरकार के इस विनिश्चय की सूचना दी कि न्यायिक सुधारों के अध्ययन और सिफारिश करने का कार्य, जिसके लिए एक पृथक् आयोग का प्रस्ताव किया गया था, वर्तमान विधि आयोग को सौंपा गया है। निर्देश में न्याय प्रशासन प्रणाली की दिन प्रतिदिन बिगड़ती हुई स्थिति के कारण इसे उच्च प्राथमिकता देने का भी अनुरोध था। तदनुसार विधि आयोग ने अपने कार्य की पुनर्व्यवस्था की।

मुझे आपको यह सूचित करने में अति प्रसन्नता हो रही है कि प्रस्तावित न्यायिक सुधार आयोग के लिए सभी निर्देश निबंधनों पर, जो हमें भेजे गए थे, सम्यक् रूप से विचार किया गया है और एक रिपोर्ट, या जहां आवश्यक था, एक से अधिक रिपोर्ट प्रत्येक निर्देश-निबंधन को उसके अंतर्गत लाते हुए दी गईं। निर्देश निबंधनों में से, निर्देश निबंधन सं० 6 'न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका के संबंध में था। उसे अंतिम रिपोर्ट के लिए आरक्षित रखा गया था।

मुझे इस निर्देश निबंधन के संबंध में 131वीं रिपोर्ट भेजते हुए प्रसन्नता हो रही है और संयोगवश यह वर्तमान विधि आयोग की अंतिम रिपोर्ट है।

मुझे विश्वास है कि ये सभी रिपोर्टें, इससे पूर्व कि कोई व्यक्ति इनके संबंध में "आमीन" कहे, प्रणाली का पुनरुद्धार करने की दृष्टि से शीघ्र क्रियान्वित की जाएंगी।

अभिवादन सहित,

आपका

डी० ए० देसाई

सं० एक रिपोर्ट

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1 4 जनवरी, 1971 को हुए चौथे कामनवेल्थ विधि सम्मेलन पर भारत के राष्ट्रपति के उद्घाटन अभिभाषण का उत्तर देते हुए सेंट मेर्लबोन के लार्ड हेल्शाम, ग्रेट ब्रिटेन के लार्ड चांसलर ने कहा :–

"महोदय, आप हमारी वृत्ति के प्रति बहुत उदार रहे हैं। किन्तु हम अपने आपसे यह तथ्य नहीं छिपा सकते कि वकील, जिनका प्रतिनिधित्व करने के लिए मैं यहां हूं, ऐसा मूलवंश है तो सर्वत्र लोकप्रिय नहीं है, फिर भी मेरा विश्वास है कि वे सर्वत्र अपरिहार्य पाए जाते हैं। वे सर्वत्र लोकप्रिय कैसे हो सकते हैं जब यह बात तर्कसंगत है कि सभी प्रतिवादित मुकदमों में कम से कम एक पक्षकार निराश होता है और अपने स्वयं के आचरण या अपने मामले की दुर्बलता के स्थान पर प्रायः अपने वकील को या अपने विरोधी के वकील को या शायद यह उद्वेगकारी बात प्रतीत हो, न्यायाधीश को भी दोषी ठहराने को तैयार रहता है ? ..... हम वकील अपनी वृत्ति पर अत्यंत गौरव करते हैं। हमारे बारे में अन्य लोगों के जो भी विचार हो हम अपने आपको मानवता की सेवा में लगे हुए समझते हैं।"[1] लार्ड चांसलर के भाषण में निर्दिष्ट लोकप्रियता के अभाव के लिए बताए गए कारण पर राय आरक्षित रखते हुए न्याय प्रशासन के मुकाबले में बार की स्थिति का यहां सुंदर ढंग से वर्णन किया गया है। और कथन करने वाले व्यक्ति की प्रवीणता/निर्विवाद है क्योंकि उसके व्यक्तित्व में न्यायाधीश, मंत्री, विधायक और वकील सभी सम्मिलित हैं। विधिक वृत्ति ने उच्च पार्श्वदृश्य अर्जित कर लिया है और परिणामस्वरूप विधि के कई सामाजशास्त्रियों[2] का बहु-विषयक ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इससे वृत्ति के लिए रोगवत घृणा से अनुचित रूप से आरोपित विधि-प्रवीण एक व्यक्ति ने विवश होकर यह प्रख्यान किया कि "यदि समाजशास्त्र का अल्पज्ञान किसी व्यक्ति को विधि से दूर ले जाता है तो (साधारण रूप से) समाजशास्त्र का अधिक ज्ञान किसी व्यक्ति को विधि[3] के अध्ययन की ओर मोड़ देता है। विधिक वृत्ति के समाजशास्त्रीय कई अध्ययन हाल ही में प्रकाशित हुए हैं।[4]

1.2 विधिक वृत्ति स्वरूप में बहुआयामी है। इस रिपोर्ट का तात्पर्य विधिक वृत्ति का सभी आयामों या उसकी संरचना, संगठन या कार्यकरण के संदर्भ में अध्ययन और विश्लेषण करने का नहीं है। न ही इसका विभिन्न समूहों अर्थात् वादियों, न्यायाधीशों, राजनीतिज्ञों, विद्याशास्त्रियों और आपस में विधिक वृत्ति के संबंध का समाजज्ञान होने का तात्पर्य है। इस रिपोर्ट का सीमिति उद्देश्य अर्थात् न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली में विधिक वृत्ति की भूमिका के रूप में स्पष्ट किया जाता है।

1.3 वर्तमान विधि आयोग को न्यायिक सुधारों के अध्ययन के कार्य के सौंपे जाने के पश्चात् उसके द्वारा तैयार की गई और प्रस्तुत की गई रिपोर्टों की श्रृंखला में यह रिपोर्ट अंतिम कड़ी होगी। न्यायिक सुधारों के अध्ययन के लिए भारत सरकार द्वारा तैयार किया गया एक निर्देश निबंधन "न्याय प्रशासन प्रणाली" को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका है। यह निबंधन रिपोर्ट के विस्तार और सीमा को स्पष्ट करता है। विधिक वृत्ति इस देश में बुद्धिजीवियों की अग्रतम वृत्तियों में से एक हैं और जैसा पहले वर्णन किया गया है यह बहुआयामी है। वर्तमान रिपोर्ट न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका के संबंध में है। इसलिए इस रिपोर्ट की परिसीमाएं विहित करना आवश्यक है।

1.4 वर्तमान न्याय प्रशासन प्रणाली का उद्भव भारत में ब्रिटिश शासन के आने से हुआ। इसकी संरचना और संगठन में भारत में इस समय प्रचलित न्याय प्रशासन पर "यूनाइटेड किंगडम में तैयार किया गया" की मुहर लगी है। ब्रिटिश न्यायप्रणाली, उस पर बैरिस्टरों और सालिसिटरों को उसके पूर्णांकी भाग होने के बिना, विचारणीय नहीं है। जब ब्रिटिश शासकों ने भारत में ब्रिटिश न्याय की संस्था थोड़ा-थोड़ा करके आरंभ की तब विधिक वृत्ति भी उसके साथ ही आ गई। इस प्रकार बैरिस्टर और सालिसिटर भी आ गए। जिस रूप और संगठन में विधिक वृत्ति की संस्था इस समय अस्तित्वशील है उसकी भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन से पूर्व के भारतीय इतिहास की अवधि से कोई सुसंगति या संबंध नहीं है। इस निमित्त किए गए अनुसंधान से प्रकट होता है कि जब कुछ संधानकर्ता यह दावा करते हैं कि ब्रिटिश शासन पूर्व या प्राचीन भारत में वादियों को अपने दावों के

प्रतिनिधित्व का किसी अन्य व्यक्ति को प्रत्यायोजन करने का अधिकार था तो उससे यह विश्वास सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत[5] में वकील थे। प्रतिकूल प्रख्यापन यह है कि प्राचीन भारत की विधिक प्रणाली में वकील सुभिन्न प्रवर्ग के रूप में कभी भी विद्यमान नहीं थे तर्क यह है कि धर्मग्रंथों के अनुसार साक्ष्य की छानबीन करना तथा न्याय[6] करना सम्राट या न्यायाधीश का कर्तव्य था ब्रिटिश पूर्व काल में न्याय प्रशासन प्रणाली विरोधी पद्धति के गहरे रंग में नहीं रंगी थी जिसके परिणामस्वरूप उक्त सांस्कृतिक संदर्भ में वादियों या उसके प्रतिनिधियों की सम्राट के समक्ष अपने मामले की बहस करने में सहायता करने के लिए विधिक वृत्ति की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि जैसा पहले कहा गया है सम्राट के साक्ष्य का विश्लेषण और सत्यता तक सीधे स्वयं पहुंचना अपेक्षित था। यही स्थिति संपूर्ण मुगलकाल में विद्यमान रही जो ब्रिटिश लोगों के आने से थोड़ा पूर्व समाप्त हुई।

1.5 18वीं शताब्दी के मध्य के निकट ब्रिटिश लोगों के भारत में प्रवेश से एक महत्वपूर्ण विकास हुआ जिसके परिणामस्वरूप व्यवस्थित रूप से कोई परिवर्तन हुए। साम्राज्य के समेकन की व्यवस्थित प्रक्रिया के भागरूप इंग्लिश कामन ला और ब्रिटिश कानूनी विधियों को भारतीय विधिक तंत्र का भाग बनाया जाना था। उस उद्देश्य से ब्रिटिश बार के सदस्य न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किए गए। ब्रिटिश विधि और कामन ला से सुपरिचित होने से उन्होंने पुस्तक विधि का, जो कुछ भी वह थी कामन ला का रंग देते हुए निर्वचन किया। उन्हें ऐसी बार की आवश्यकता थी जो ऐसा परिवर्तन करने में उनकी सहायता कर सके। शेष कार्य मकाले ने भारत में विधियों का संहिताकरण करते हुए कर दिया। उच्चतम न्यायालय और सदर न्यायालयों के इतिहास के आरंभिक काम में विधिक वृत्ति में अधिकतर ब्रिटिश बैरिस्टर और सालिसिटर थे। इन सभी बातों का परिणाम देश में विधिक वृत्ति का अपरिहार्य आगमन और विकास था जिसकी न्यायालय पर आधारित प्रशासन की सुव्यवस्थित विधिक प्रणाली के संदर्भ में स्वतः सुसंगति थी।

1.6 यह 1774 का चार्टर था जिससे वादियों की ओर से बहस और कार्य करने के लिए विद्यमान न्यायालयों को अधिवक्ताओं और अटर्नियों का अनुमोदन करने, प्रविष्टि करने और नामावलीगत करने के लिए सशक्त किया गया था और साथ ही न्यायालयों को "युक्तियुक्त हेतु पर और उचित रूप से प्रविष्टि और नामावलीगत न किए गए व्यवसाइयों को न्यायालय[7] में व्यवसाय करने से प्रतिषिद्ध करने के लिए न्यायालयों की नामावली से वकीलों को हटाने की शक्ति प्रदत्त की गई थी। 1974 का रायल चार्टर का समय के साथ दो प्रेसिडेंसियों मद्रास और मुम्बई में विस्तार किया गया जिन्होंने क्रमशः 1801 और 1823 में अपने उच्चतम न्यायालय बना लिए। इससे विधिक वृत्ति को वास्तव में बहुत समर्थन प्राप्त हुआ जो अब कानूनी तौर पर मान्यता प्राप्त हो गई थी। इससे वकीलों को न केवल अत्यधिक प्रतिष्ठा मिली अपितु उनके उपार्जन भी अधिक हो गए—यह एक ऐसा तथ्य है जिसकी रिपोर्ट सेमुअल स्किमियनर ने नाटकीय रीति से की है।

1.7 संक्षेप में यह स्पष्ट कर दिया जाए कि विधिक प्रणाली दो विभिन्न न्यायालय-संवर्गों अर्थात् मुफस्सिल (जो न्यायालयों की दो श्रेणियों से मिल कर बनी थी, अर्थात् मुफस्सिल और सदर न्यायालय) और प्रेसिडेंसी न्यायालयों में विभाजित चलती रही। मोटे तौर पर कहा जाए तो प्रेसिडेंसी न्यायालय भारत में ब्रिटिश द्वारा संहितबद्ध विधि या कामन ला की विरचनाओं का अनुसरण करते थे और मुफस्सिल न्यायालय अधिकतर हिंदू और मुहम्मडेन विधि का अनुसरण करते थे। इसके अतिरिक्त प्रेसिडेंसियों में वृत्ति के पूर्ण रूप से ब्रिटिश संरचना के मुकाबले मुफस्सिल न्यायालयों में वृत्ति कम से कम 1846 तक अनन्य रूप से भारतीय अर्थात् हिंदू और मुस्लिम थी। दो स्तरों पर दो सहअस्तित्वशील मतभेदग्रस्त वृत्तियों के बीच यह विभिन्नता 1858 तक चलती रही जब ब्रिटिश सरकार ने कंपनी को अधिक्रांत कर दिया और उपनिवेश का भार सीधा अपने ऊपर ले लिया। ब्रिटिश ने पहले कंपनी के मुफस्सिल न्यायालयों के साथ रायल न्यायालयों का समेकन किया। उन्होंने उच्च न्यायालय की स्थापना की जो नई प्रणाली में शिखिरस्थ थे। साम्राज्य के विस्तार और क्वीन के अधिकार के अधीन अधिक क्षेत्र लाए जाने के साथ इलाहाबाद (1880), पटना (1916) और लाहौर (1919) में उच्च न्यायालय स्थापित किए गए। ब्रिटिश काल के दौरान भारत में विधिक वृत्ति के विकास के ब्यौरे देने में पूर्ण आशय यह था कि उक्त एकीकरण ने वृत्तिक प्रकृति को सर्वव्यापी बनाने में बहुत सहायता की और विधिक समुदाय को कुछ एकीकृत स्वरूप प्रदान किया। बहुत से भारतीय भी इस वृत्ति की ओर आकर्षित हुए। तब से भारतीय वकील अपने ब्रिटिश तत्स्थानियों के साथ-साथ व्यवसाय कर सकते थे और इस प्रकार उनसे विधिक आचरण और पद्धति के ऐसे मानक ग्रहण किए जो ब्रिटिश लोग ब्रिटिश विधि प्रणाली के भागरूप अपने साथ लाए थे।

1.8 जैसे-जैसे पश्चिमी विधि प्रणाली ने भारत में गहरी जड़ें पकड़ लीं वैसे ही भारतीय विधिक वृत्ति का विस्तार होता गया। अधिक भारतीयों के विधि को अपनी वृत्ति के रूप में अपना लिया और उसी प्रकार अच्छा कार्य करने लगे जैसे उनके ब्रिटिश तत्स्थानी करते थे। बैरिस्टर की अर्हता का स्वयं अपना ही सम्मान था। बहुत से भारतीय बैरिस्टर के रूप में प्रशिक्षण लेने के लिए ब्रिटेन जाने लगे और फिर भारतीय न्यायालयों में व्यवसाय करने के लिए लौटे।

1.9 इंगलैंड में अर्हित बैरिस्टरों और सालिसिटरों के अतिरिक्त सिविल न्यायालयों में वकीलों या देशी प्लीडरों की नियुक्ति के लिए उपबंध किया गया। 1793 के बंगाल विनियम 7 से वकीलों की नियुक्ति विनियमित की गई। इसमें एक असाधारण उपबंध था, जिसके द्वारा केवल मुस्लिम और हिंदू ही प्लीडरों के रूप में नामावलीगत किए जा सकते थे। बाद में विभिन्न समुदायों के बीच यह विभेद त्यक्त कर दिया गया। पंजाब मुख्य न्यायालय अधिनियम, 1866 के अधीन यह उपबंध किया गया कि "सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इंडिया इन काउंसिल द्वारा उपस्थित होने के लिए सम्यक् रूप से प्राधिकृत कोई व्यक्ति उसकी ओर से अभिवचन या कार्य कर सकता था।[9]

1.10 चाहे भारतीय विधिक स्थापना आरंभ में भारत में अपने प्रशासन की अभ्यावश्यकताओं को पूरा करने के लिए विदेशी शक्ति द्वारा लाया गया "पश्चिमी संस्था का अंतरण" का मामला था शीघ्र ही इसने स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष का नेतृत्व ग्रहण कर लिया। इस वृत्ति ने स्वतंत्रता आन्दोलन में तारक भाग लिया। इसने अपनी सचेतना विधिक साहित्य के माध्यम से ब्रिटिश लोकतांत्रिक संस्थाओं से अपने संबंध के कारण अर्जित की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जिसने स्वतंत्रता के आंदोलन का नेतृत्व किया उस समय के विधि विद्वानों अर्थात् राष्ट्रपति महात्मागांधी, मोतीलाल नेहरू, चितरंजनदास, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार बल्लभ भाई पटेल, विट्ठल भाई पटेल, पंडित जवाहरलाल नेहरू और कई अन्यों के लिए एकत्र होने का बिन्दु बन गई। उनमें से जो जीवित बचे उन्होंने स्वतंत्र भारत में प्रतिष्ठा वाले पद धारण किए।

1.11 इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि भारतीय विधिक वृत्ति के सदस्यों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण स्थान धारण किया। विधिक वृत्ति के सदस्यों ने बुद्धिमत्ता और समाज के नेता होने का सम्मान प्राप्त किया। उस समय के सामाजिक राजनैतिक प्रवाह में विधिक वृत्ति के सदस्यों की सहभागिता सीमित प्रांतीय स्वायत्तता देने की ब्रिटिश सरकार के नीति के अधीन विभिन्न प्रांतीय विधायी परिषदों के प्रशासन में भारतीय लोगों की बढ़ती हुई सहभागिता द्वारा भी साक्ष्यित थी। स्वतंत्रता प्राप्ति तक, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि विधिक वृत्ति के सदस्यों ने महत्वपूर्ण स्थान धारण किए।

1.12 क्या वही स्थिति आजकल विद्यमान है? स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् क्या विधिक वृत्ति ने बुद्धिमत्ता और समाज के नेताओं के रूप में अपनी स्थिति को बनाए रखा और उसमें वृद्धि की है? यदि नहीं, तो क्षय और कमी के कारणों का वस्तुपरक विश्लेषण विरोधी या निंदक आलोचक के दृष्टिकोण से नहीं अपितु एक सहानुभूति रखने वाले ऐसे मित्र द्वारा किया जाना होगा, जो विधिक वृत्ति का सदस्य हो और जो कारणों का अंतरावलोकन से पता लगाना और उसको प्रतिष्ठा का स्थान तथा उसका प्राचीन गौरव दिलाना चाहता हो। उसके लिए व्यापक अनुसंधान की आवश्यकता है और वह इस रिपोर्ट के विस्तार के बाहर है।

1.13 यह रिपोर्ट न्याय प्रशासन के मुकाबले में विधिक वृत्ति की भूमिका के संबंध में होगी। जैसा पहले बताया गया है ब्रिटिश न्याय प्रणाली विरोधी प्रकृति की है और वह प्रणाली आज तक जीवित है। विरोधी प्रणाली न्यायाधीश की स्थिति सहनशील श्रोता जैसी बना देती है जो क्रिकेट के खेल में निर्णायक के प्रकार की होती है, जो उसे सत्य के ऊपर से पर्दा उठाने में सहभागी होने से विधिक वृत्ति के सदस्य विरोधी प्रणाली में पूर्ण अपरिहार्यता की स्थिति में होते हैं। यदि विरोधी प्रणाली को कुछ और अवधि के लिए प्रयोग और गलती के लिए चालू रहना है क्योंकि यह यहां पर 200 वर्ष से अधिक की अवधि से यहां पर है। तो न्याय करने की प्रक्रिया में विरोधी प्रणाली को कार्यशील रूप से परिचालित करने में विधिक वृत्ति की भूमिका को पूर्ण रूप से मूल्यांकन करना होगा और यदि कोई दुर्बलताएं या कमियां आ गई हैं तो उन्हें दूर करना होगा जिससे विधिक वृत्ति न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में सहायता कर सके।

1.14 इस दृष्टिकोण की जांच प्रणाली और न्याय करने की दृष्टि से उसी प्रणाली को प्रवर्तित करने वाले न्यायाधीश के विपरीत विरोधी प्रणाली द्वारा विचारण में विधिक वृत्ति की भूमिका को अभिनिश्चित करने की आवश्यकता है। श्री वारन बरजर ने यह कहकर दोनों के लिए एक लक्ष्य स्थापित कर दिया है कि "हमारा निरंतर प्रयोजन अपने मन में यह धारणा करने का होना चाहिए कि वकीलों का कर्तव्य और न्यायाधीशों का कर्तव्य लघुतम समय में न्यूनतम खर्च पर उत्तम क्वालिटी के न्याय का प्रदान करना है[10]। यह वकीलों और न्यायाधीश की अपनी-अपनी भूमिका है। यदि प्रत्येक को सौंपी गई भूमिका उचित रूप से, पर्याप्त रूप से, ईमानदारी से और दक्ष रूप से निभाई जाती है, तो विरोधी प्रणाली को, जिसकी तीखी आलोचना की गई है दो शतकों की प्राचीनता के आधार पर अभी भी रखा जा सकता है। किंतु आलोचना मोटे तौर पर सुआधारित है इसलिए इसे पुनर्जीवन दान देने के लिए त्रुटियों, कमियों और अपूर्णताओं को दूर करना होगा।

1.15 वर्तमान प्रदाय प्रणाली के कुछ कुरूप लक्षण अर्थात् अतिविस्तृति, उच्च प्ररूपिता, विलंब-कारिता और खर्चीलापन सामने आए इसलिए प्रणाली से संबद्ध व्यक्तियों ने उन कारणों को अनाच्छादित करने का प्रयत्न किया जिनसे ये बुराइयां इसमें आई। निस्संदेह संपूर्ण प्रणाली तीखी आलोचना का भाजन हुई। जब किसी प्रणाली की आलोचना की जाती है तो उसकी अपूर्णताओं और कमियों पर प्रकाश डाला जाता है। जब उन पर एक बार प्रकाश डाल दिया जाता है तो तलाश उसके कारणों को अनाच्छादित करने के लिए की जाती है। न्याय प्रदाय प्रणाली के क्षय और उत्क्रम-व्यवस्थापन के कारणों में से अब कुछ, प्रणाली की विदेशी प्रकृति के कारण माने जा सकते हैं। किंतु इस तथ्य को दृष्टि से दूर नहीं करना चाहिए कि यह प्रणाली इस देश में दो दशकों से अधिक से चलन में है। किसी विस्तार तक इसे देशी भी कहा जा सकता है चाहे इसका संपूर्ण चित्र ब्रिटिश है और इसलिए विदेशी रहता है। वृत्ति ने भी, जो प्रणाली के पूर्णकी भाग के रूप में विकसित हुई, अपने दृष्टिकोण, खंडन महत्व, न्यायालय और अपने साथियों को संबोधित करने के ढंग और सत्य को अभिनिश्चित करने की रीति को उसी प्रकार रखा जिस प्रकार वह युनाइटेड किंगडम में चलन में है। अभी बहुत कम समय पहले तक पदाभिधान भी आयातित थे जैसे "बैरिस्टर" और "सालिसिटर" वरिष्ठ न्यायालयों की भाषा निर्विवाद रूप से अंग्रेजी है। कामन ला विरचनाओं को आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इसलिए बड़ी संख्या में लोगों की राय हो गई है कि प्रणाली की कुछ बुराईयों को विरोधी प्रणाली के कारण हुआ माना जा सकता है। उसके जन्म स्थान में भी प्रणाली की प्रभावकारिता के बारे में घोर संदेह किए जाते हैं।

1.16 सर जान फास्टर क्यू सी ने अंग्रेजी विधिक प्रणाली की बात अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। वह कहते हैं :—

> "मैं समझता हूं कि पूर्ण अंग्रेजी विधिक प्रणाली अनर्थक है। मैं इसके मूल तक जाऊंगा—दो प्राइवेट पक्षकारों के बीच सिविल मामला एक स्वांग लड़ाई है जिसमें योद्धा प्रत्येक पक्ष द्वारा चयन किए गए साक्षी हैं किंतु जो अनिवार्य रूप से वे लोग नहीं है जो तथ्यों को जानते हैं। और लड़ाई का संचालन मध्यकाल के साक्ष्य के नियमों के अनुसार किया जाता है। किसी क्यू सी को विशेषज्ञ की सदैव आवश्यकता नहीं होती है। कनिष्ठ अधिवक्ता का उपयोग मामले की आवश्यकता-नुसार किया जाना चाहिए। और विधिक सहायता बहुत विस्तार तक महंगी है क्योंकि प्रणाली बहुत मतिहीन है—आपको प्रत्येक व्यक्ति को उसी दिन न्यायालय में प्रस्तुत करना होता है——— किसी अंग्रेजी न्यायालय को यह मनाना बहुत सरल है कि काला सफेद है, ऐसा करना कम सरल होगा यदि तर्क लिखित रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं।"

इंग्लैंड में विधिक तरीकों के बारे में बोलते हुए लार्ड डवलिन ने यह गुप्त संप्रेक्षण किया :

> "यदि हमारे कारबारी ढंग हमारे विधिक ढंगों के रूप में अप्रचलित हों तो हम एक दिवालिया देश होंगे। हमारी प्रक्रिया के मूल के बारे में इसे कल्याणकारी राज्य की दशाओं के अनुरूप अनु-कूलित करने के दृढ़ निश्चय के साथ समर्थित व्यापक जांच की आवश्यकता है।[12]

न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर, भारत के उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश ने विरोधी प्रणाली का निम्नलिखित रूप में मूल्यांकन किया :

> 'विरोधी शासन पद्धति, जो आंग्ल अमरीकी विधिक संस्कृति की विरासत है यदि उसे एतिहासिक रूप से स्टार चेंबर स्मृति से देखा जाए तो कई पहलुओं में सिद्धांत रूप से शोभायमान है और

मानव अधिकारों के लिए वास्तव में जीत है किंतु न्यायालयजन्य न्याय के यथार्थीकरण की विरोधी है जब तक कि प्रचलित न्यायिक पद्धति को अंतःकरण के अनुकूल, सूक्ष्मग्राही बनाने और मौलिक बनाने के लिए सृजनकारी और दृढ़ रूप से कार्यसंबंधी नवीन परिवर्तन नहीं किए जाते हैं।"[13]

"इस शताब्दी के अंतिम तृत्यांश में, हम मूल रूप से उन्हीं मूल पद्धतियों, उन्हीं प्रक्रियाओं और उन्हीं कार्मिकों से न्यायालयों को संचालित करने का प्रयत्न कर रहे हैं जो 1906 में भी पर्याप्त रूप से अच्छे नहीं थे"....रास्को पाउंड ने कहा। सुपर मार्किट युग में हम न्यायालयों का संचालन, संकीर्ण गली के पंसारी की पद्धतियों और उपस्करों से—जो 1900 तक थे करने का प्रयास कर रहे हैं[14]। कुछ लोगों की यह राय है कि सभी कुरूप लक्षण, उनमें दो अतिमहत्वपूर्ण, अतिविस्तृत और खर्चीलापन विधिक वृत्ति की भूमिका के कारण हुए माने जा सकते हैं। यह किसी अपमानकारी भावना से नहीं कहा जाता बल्कि यह दर्शित करने के लिए कहा जाता है कि सुधार कहां संभव है।

1.17 न्याय प्रशासन को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका की जांच करते समय विशेषज्ञों के इन संप्रेक्षणों का ध्यान में रखना होगा।

अध्याय 2

वार्ता

2.1 सामान्य रूप से कोई समूह, श्रेणी या प्रवर्ग साधारणतया अपनी प्रतिभा और हितों की सुरक्षा और प्रतिरक्षा करने का प्रयास करता है फिर भी वृत्ति से संबंधित समस्याओं पर व्यापक विचार करने के लिए विधि आयोग ने विभिन्न विषयों पर, जिनके अंतर्गत न्यायपालिका को शक्तिशाली बनाने में उसकी भूमिका है, वृत्ति के अपने बोध की खोज करना वांछनीय समझा। तदनुसार विधि आयोग ने एक प्रश्नावली तैयार की जो उपबंध 1 के रूप में संलग्न है और इसे व्यापक रूप से परिचालित किया। प्रश्नावली विधिक वृत्ति के सदस्यों के संगठनों जैसे विधिज्ञ परिषदों और विधिज्ञ संगमों को भेजने का हर प्रयत्न किया गया। विषय में हितबद्ध प्रत्येक व्यक्ति को प्रश्नावली की प्रति मंगवाने के लिए आमंत्रित किया गया। प्रश्नावली प्रत्येक उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को इस अनुरोध के साथ भेजी गई कि वह उसे उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और न्यायाधीशों की जानकारी में लाए जिससे विभिन्न विचार अभिप्राप्त हो सकें। प्रश्न विधिक वृत्ति के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करने के लिए तैयार किए गए थे अर्थात् :—

(i) वृत्ति की स्थिति और जनता में इसकी प्रतिभा,

(ii) संविधान के अधीन आशयित सामाजिक परिवर्तन की नीति के प्रति वृत्ति का दृष्टिकोण,

(iii) विधिज्ञ परिषदों का कार्यकरण और अनुशासनिक अधिकारिता का प्रश्न,

(iv) वकीलों द्वारा हड़ताल, उसकी विवक्षाएं और विवाद,

(v) बार और राजनीतिज्ञों, बार और न्यायपालिका के बीच गुप्तवार्ता और अंतिमतः,

(vi) वृत्ति के एकाधिकारी स्वरूप के संबंध में वृत्ति के सदस्यों द्वारा प्रभार्य फीस का विनियमन और मानकीकरण।

2.2 प्रश्नावली के उत्तरों को सारणीबद्ध करने से पूर्व यह कथन किया जाता है कि संगठित बार से उत्तर अपर्याप्त मात्रा में आए हैं। यदि भारत की विधिज्ञ परिषद् ने, जो संगठित बार का शिखिर निकाय है, प्रश्नावली का उत्तर दिया होता और वार्ता और बातचीत करने के लिए रजामंदी दर्शित की होती तो विधि आयोग भी उनके लिए प्रत्येक सुविधा देता। वास्तव में विधिज्ञ परिषद न्यास के सचिव ने, जो न्याय प्रशासन को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका का निर्धारण, मूल्यांकन और यदि आवश्यक हो तो उसमें सुधार के लिए विधि आयोग की सहायता कर रहा था, सुझाव दिया कि यदि वित्तीय सहायता दी जाए तो भारत की विधिज्ञ परिषद् इस विषय पर चर्चा करने के लिए एक प्रतिनिधिक सम्मेलन आयोजित करने के लिए राजी है। विधि आयोग ने इस अवसर का लाभ उठाया और इस विषय पर अपने संपूर्ण नीति विषयक

विनिश्चय की सीमाओं के भीतर वित्तीय सहायता देने के लिए सहमत हो गया । इससे पूर्व भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली से इसी विषय पर विधि आयोग के सहयोग से एक सम्मेलन आयोजित करने का सुझाव प्राप्त हुआ था । इसलिए जब विधिज्ञ परिषद् न्यास ने सम्मेलन की बात की तो विधि आयोग ने यह सुझाव दिया कि क्या सभी तीनों अर्थात् विधि आयोग, भारत की विधिज्ञ परिषद और भारतीय विधि संस्थान संयुक्त रूप से सम्मेलन का आयोजन कर सकते हैं। उसने कहा कि ऐसा करना सब से उत्तम बात होगी। तद्नुसार भारतीय विधि संस्थान को सम्मेलन का सह-प्रायोजक होने के लिए सूचना दी गई । बाद में भारत को विधिज्ञ परिषद् को भारतीय विधि संस्थान द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए विद्वानों के भाग लेने के बारे में आपत्ति थी और उसने सुझाव दिया कि भारतीय विधि संस्थान को सह-प्रायोजक नहीं होना चाहिए। भारत की विधिज्ञ परिषद् ने यह भी सुझाव दिया कि वह विधि आयोग द्वारा वित्तीय सहायता के अभिदाय के बिना अकेली ही सम्मेलन का आयोजन करेगी। सम्मेलन के लिए तारीखें नियत की गईं। विधि आयोग ने भी अपना अभिदाय भेज दिया था। अंततोगत्वा भारत की विधिज्ञ परिषद् ने, उन कारणों से जिन्हें यहां वर्णित करना आवश्यक नहीं है विधि आयोग द्वारा किए गए अभिदाय को वापस कर दिया, सम्मेलन को मुल्तवी कर दिया और उसे फिर संयोजित नहीं किया। इसमें प्रश्नावली का उत्तर भी नहीं दिया। हानि, विधि आयोग और विधिक बंधुता को हुई।

2.3 प्रश्नावली के कुल 38 उत्तर प्राप्त हुए। उन व्यक्तियों/निकायों की सूची, जिन्होंने प्रश्नावली का उत्तर दिया इस रिपोर्ट के उपाबंध 2 के रूप में संलग्न है। सारणीयन निम्न प्रकार है :—

विधि व्यवसायी	विधिज्ञ परिषदें/ संगम आदि	उच्च न्यायालय प्रशासन	न्यायाधीश	स्वैच्छिक निकाय/ न्याय उपभोक्ता	विद्वान
7	11	2	6	6	4

इससे पूर्व कि उत्तर देने वालों के विचारों का सारांश तैयार किया जाए इस निराधार आलोचना से बचने के लिए कि प्रश्नावली की समालोचना प्रकाश में नहीं लाई गई है प्रश्नावली के विरुद्ध शिकायतों का यहां सारांश दिया जाता है। मुम्बई विधिज्ञ संगम ने प्रश्नावली ने अपने उत्तर भेजते हुए प्रश्नों की भाषा और प्रकट शब्दों के बारे में अपनी तीव्र निराशा, यह महसूस करते हुए कि 'प्रश्न विधिक वृद्धि के विरुद्ध उद्घोषित पक्षपात सहित रीति से तैयार किए गए है, व्यक्त की। प्रश्नों का परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि प्रारूपकार ने उसमें से कुछ विषयों का पूर्वविधारण कर लिया था। कुछ प्रश्न, अस्पष्ट थे, कुछ में निहित धारणा थी और कुछ अतार्किक थे। इस आलोचना का गुणाग्रहण करने के लिए विधि आयोग ने प्रश्नावली को इस रिपोर्ट के साथ उपाबंध[1] के रूप में संलग्न किया है। व्यक्त विचारों पर टिप्पणी किए बिना, क्योंकि विधि आयोग मुम्बई, विधिज्ञ संगम के साथ वाद-विवाद में नहीं पड़ सकता क्योंकि इसनेविचार अभिनिश्चित करने के लिए वार्ता आरंभ की थी, विधि आयोग यह बात पाठक पर छोड़ देता है कि वे प्रश्नों को देखें और अपना निर्धारण करें। केवल यही कहा जा सकता है कि आलोचना में कोई गुण नहीं है। केवल एक प्रख्यान किया जा सकता है कि सत्य कड़वा होता है। किंतु यह परिहार्य है यदि उस स्थिति का, जिसमें समाज के मुकाबले में वृद्धि को देखा जाता है, उद्धार करने के लिए अंतरावलोचन प्रारंभिक आवश्यकता है। अहमदाबाद विधिज्ञ संगम में प्रश्नावली का उत्तर देते हुए सदस्यों की बहुसंख्या की भावना इस प्रकार व्यक्त की कि, 'प्रश्नों की भाषा और विरचना के उत्पन्न होने वाला व्यंग तिरस्कार योग्य है और इसलिए उसका रोष किया जाता है।' दूसरी ओर बिहार विधिज्ञ परिषद् ने यह राय व्यक्त की कि 'प्रश्नावली विचारयोग्य है और यदि उत्तर आते हैं और क्रियान्वित किए जाते हैं तो यह सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्य की पूर्ति की गति को त्वरित कर सकती हैं'। यह और कथन किया गया है कि यह सत्य है 'कि समकालिक विधिक वृद्धि ने जनता का आदर मुख्य तौर पर इसलिए खो दिया है क्योंकि वकील लोक क्रिया कलाप में भाग लेते हुए समृद्ध हो गए हैं। वे बहुत स्वकेंद्रित हो गए हैं। और उन्होंने धन उपार्जन को अपना सकेंद्र बना लिया है।' इसके अतिरिक्त यह कहा गया है कि 'इस बात से इन्कार

नहीं किया जाता है कि देश में विधिक वृत्ति की प्रतिभा कम हुई है। प्रतिभा को कम करने के कई कारण हैं — कुछ मुद्रण योग्य हैं और कुछ मुद्रण योग्य नहीं है।' किसी राज्य की विधिक परिषद् उस राज्य की बार का प्रतिनिधित्व करती है और उसका एक प्रतिनिधि भारत की विधिज्ञ परिषद् में बैठता है। बिहार राज्य में मुजफ्फरपुर विधिज्ञ संगम ने इस बात पर यह कहकर अपनी राय व्यक्त की है कि 'समकालिक विधिक वृद्धि जनता की दृष्टि में गिर गई है क्योंकि आर्थिक अभिलाभ और फायदा आर्थिक उथल-पुथल और धन के अवमूल्यन के कारण उनका प्रथम लक्ष्य बन गया है और न्याय प्रशासन में सहायता करने का उनकी मुख्य भूमिका उक्त प्रथम लक्ष्य के अधीनस्थ हो गई है।' दूसरी ओर पंजाब और हरियाणा विधिज्ञ परिषद् ने कहा है कि 'विधिक वृत्ति साधारण जनता की दृष्टि में नहीं गिरी है। यह राज्य की दृष्टि में गिर गई है। क्योंकि इसने राज्य का, जब उसने अपने आपको संकटग्रस्त समझा पक्षसमर्थन किया हो।'

2.4 एक विधिज्ञ परिषद् ने यह राय व्यक्त की कि सरकार के प्रत्येक अंग की प्रतिभा में हर ओर क्षय हुआ है और 'इसके लिए प्राथमिक जिम्मेदारी कार्यपालिका की है जो पर्याप्त न्यायाधीशों और कर्मचारीवृंद की व्यवस्था नहीं करती है और स्वयं आचारभ्रष्टता में लगी है।' यह भी कहा गया कि लोक दृष्टि में विधिक वृत्ति की गिरावट की जड़ें, बार में अत्यधिक व्यक्तियों का होना, न्यायालय में मामलों के निपटारे में विलंब और विधिक वृत्ति के प्रति अपने कानूनी कर्तव्यों का पालन करने में भारतीय परिषद् की ओर से उदासीनता में हैं।

2.5 विधिक वृत्ति के सदस्यों से भिन्न व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों की चर्चा करने से पूर्व यह कथन किया जाता है कि विधिक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले निकायों में भी यह भावना है कि विधिक वृत्ति का जनता की दृष्टि में अवमूल्यन ही हुआ है। निसंदेह विधिक वृत्ति के सदस्य इस अरूचिकर तथ्य को स्वीकार करने में झिझकेंगे। और स्पष्ट रूप से सर्वव्यापी स्वीकृत इस तथ्य का कड़ा प्रत्याख्यान करते हुए विधिक वृत्ति का संगठन प्रश्नावली की जिसने प्राख्यान के लिए उत्तेजित किया, निंदा करेगा। यह इस प्रकार है कि उन व्यक्तियों की सद्भाव को, जिन्होंने प्रश्नावली तैयार की कम से कम दो निकायों द्वारा प्रश्नगत किया गया है जो इसमें इससे पूर्व विनिर्दिष्ट रूप से अधिकथित किए गए हैं।

2.6 अवृत्तिक स्वैच्छिक निकायों की अपनी भिन्न कहानी है। एक प्रत्यर्थी ने कहा है कि जनता खुले तौर पर कह रही है कि विधिक वृत्ति सेवोन्मुख नहीं रह गई है, कि यह लाभोन्मुख है और यह है कि वकील यथासंभव विस्तार तक मुवक्किलों को निचोड़ने में ही लगे हुए हैं। दीन महिलाओं को विधिक सहायता की व्यवस्था करने में लगे एक अन्य स्वैच्छिक निकाय ने इसी प्रकार की राय व्यक्त की कि 'समकालिक विधिक वृत्ति धन के लालच लघु कारणों के लिए वर्षों तक मामलों को लटकाए रखने और केवल धन के लिए अपनी भक्ति दूसरे पक्षकार में परिवर्तन करने के कारण जनता का आदर खो चुकी है। कई बार दोनों पक्षों के वकील दोनों पक्षकारों को समझौता करने में एकमुठ हो जाते हैं चाहे मुवक्किलों को हानि सहन करनी पड़े। वकीलों की बहुसंख्या अपने मुवक्किलों को और अधिक फीस के लिए दिक करती है, मिथ्या बिल बनाती है और मामले में अपेक्षित रुचि नहीं लती है।

2.7 उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों ने प्रश्नावली का उत्तर देने के लिए अपनी व्यस्त कार्यसूची से समय निकाला। अपने कौशल और स्वभाव से उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया। इसलिए यह मानते हुए भी कि कुछ सीमा तक वर्तमान वृत्ति 'न्याय करने में सहायता करने के विधिक वृत्ति के मुख्य कर्तव्य से बहुत दूर चली गई है' साथ ही यह भी कहा गया कि 'चाहे हम इतना नहीं कह सकते कि इसकी वर्तमान भूमिका प्रत्युत्पादक है, किंतु सामयिक अंतरवलोकन और उचित परिवर्तन की तुरंत आवश्यकता है। मोटे तौर पर न्यायाधीशों की यह राय थी कि अधिवक्ता अधिनियम में कुछ उपांतरण वांछनीय है और प्रश्नावली के उत्तरों के आधार पर कार्यान्वित किए जाने चाहिएं।

2.8 विद्वान साधारणतया वृद्धि आचरण के गिरते हुए मानकों के प्रश्न को एकल रूप से नहीं बल्कि समाज, राजशासन विधि और विधिक प्रणाली की अन्य समस्याओं के संबंध में सोचते हैं। यह कहा जाता है :

> 'विधिक वृद्धि न्याय प्रशासन में स्वयमेव में एक अड़चन नहीं हो सकती। यह न्याय प्रणाली के संघटकों में से एक के रूप में प्रवर्तनशील रहती है और अन्य संघटकों द्वारा उत्पन्न दबावों और तनावों के अधीन होती है। तकनीकी रूप से बात करते हुए विलंबकारिता और अति विस्तृत अकेली वृत्ति द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकतीं दूसरे कारण जैसे न्यायपालिका का रुख, प्रक्रिया संबंधी और गुण संबंधी विधि की जटिलता, विधिक शिक्षा प्रणाली में कमियाँ प्रणाली के कार्यकरण से बराबर टकराती है।' 'बल्कि यह वृत्ति के सदस्यों की शीघ्र धनी हो जाओ प्रवृत्तियों के स्थान पर वृद्धि को विनियमित करने में राज्य की असफलता है जो विद्यमान परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार रही है।'

2.9 एक अन्य विद्वान का कथन है :

"हम यह नहीं कह सकते कि विधिक वृत्ति न्याय के लिए अड़चन है। जटिल तकनीकी और प्रारूपिक दृष्टिकोण मुख्य रूप से न्याय पाने का है क्योंकि न्याय, प्रक्रियाओं से छनकर आता है और उपभोक्ता इस शुद्ध पक्षपात रहित रूप में प्राप्त करता है यह केवल वृत्ति ही नहीं अपितु मुख्य रूप से सरकार है जो विलंब के लिए जिम्मेदार है क्योंकि वह न्यायपालिका में कम कर्मचारिवृंद रखती है।"

2.10 वृत्ति के खोए हुए स्वसम्मान और लोक प्रतिभा को पुनःस्थापित करने के लिए उपायों का सुझाव देते हुए विद्वानों ने (i) विधिक शिक्षा के मानकों को बढ़ाने (ii) विधिक परिषदों द्वारा अधिवक्ताओं का सावधानी पूर्वक चयन, और (iii) विद्या से संबंधित वकीलों की भूमिका पर बार-बार बल देते हैं। इन तीन सुझावों में से अन्तिम सुझाव के बारे में एक विद्वान ने यह टिप्पणी की :

"विद्या संबंधी वकीलों और वृत्ति के सदस्यों के बीच कार्य संबंध के लिए नई रीतियां बनाने की आवश्यकता है। भारत की विधिक परिषद् की विधिक शिक्षा समीति को पुर्नगठित किया जाना चाहिए। समिति के प्रतिनिधियों का चयन, उत्तमता के विख्यात संस्थाओं और उत्कृष्ट विद्वानों में से जिन्होंने विधिक शिक्षा में योगदान किया है, किया जाए।"

2.11 वकीलों द्वारा हड़ताल घृणाजनक आवर्ती हो गई है इसका उद्भव हाल ही का है। प्रत्येक पक्ष के इस बात पर दृढ़ विचार हैं कि क्या विधिक वृत्ति के सदस्य हड़ताल पर जा सकते हैं या नहीं और यदि वे जा सकते हैं तो उसके लिए कौन से न्यायपूर्ण और विवशकारी कारण हो सकते हैं और कितने समय तक वे हड़ताल पर जा सकते हैं। विधि आयोग द्वारा जारी की गई प्रश्नावली में प्रश्न सं० 4 के भाग में और प्रश्न सं० 5 में देश के विभिन्न भागों में विधिक वृत्ति के सदस्यों द्वारा हाल की हड़ताल के प्रति निर्देश था। संगठित बार के सदस्यों ने हड़ताल करने के अधिकार की एक स्वर में समर्थन किया। दूसरी ओर कुछ स्वैच्छिक संगठनों, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और व्यष्टियों ने राय व्यक्त की कि वकीलों को हड़ताल पर जाने का कोई अधिकार नहीं है।

2.12 उड़ीसा उच्च न्यायालय ने यह विचार प्रकट किया कि विधि वृत्ति के सदस्यों को हड़ताल पर नहीं जाना चाहिये न ही उन्हें अपनी मांगों के समर्थन या शिकायतों को सामने लाने के लिए हड़ताल का आश्रय लेना चाहिए। प्रश्नावली का अपनी वैयक्तिक हैसियत में उत्तर देते हुए कुछ न्यायाधीशों ने हड़ताल के विरुद्ध स्पष्ट रूप से अपने विचार व्यक्त किए। मुम्बई विधिक संगम का यह विचार था कि बार को अपनी गरिमा के अनुरूप अभ्यापति के लिए अन्य उपाय करने चाहिएं और हड़ताल का आश्रय तभी लेना चाहिए जब और कोई समाधान सम्भव न हो। दूसरी ओर अहमदाबाद विधिज्ञ संगम ने बार द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के समर्थन में विधिक वृत्ति के हड़ताल पर जाने के पक्ष में अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किए। इन अत्यन्त विचारों के बीच में अपनी व्यक्तिगत हैसियत में उत्तर देते हुए, वकीलों ने हड़ताल के पक्ष और उसके विरुद्ध राय व्यक्त की। स्वैच्छिक संगठनों और अन्य व्यक्तियों ने यह राय व्यक्त की कि विधिक वृत्ति के सदस्यों को साधारणतया हड़ताल का आश्रय नहीं लेना चाहिए क्योंकि हड़ताल अंततोगत्वा न्याय प्रशासन को नष्ट करती है।

2.13 एक स्थानीय पत्रकार ने अपने स्तंभ में कहा कि :

"वकील न्यायालयों और अधिकरणों द्वारा उपबंधित विधिक कारबार बाजार को चलाने के लिए अपने अनुज्ञप्त एकाधिकार से प्राप्त निधियों से परिपूर्ण कानूनी विधिज्ञ परिषदों, स्वैच्छिक विधिज्ञ संगमों और बड़ी संख्या में विधिक सोसाइटियों के कारण देश में सबसे अधिक संगठित समाज है। दिल्ली में साधारण नागरिक के लिये यह आतंककारी अनुपात में शक्ति है——— ———उनकी हड़ताल ने कुछ दुखदायी प्रश्न खड़े किए"।[1]

उन घटनाओं के संदर्भ में, जो जनवरी–फरवरी 1988 में तीस हजारी न्यायालय में घटीं वकीलों की हड़ताल के बारे में एक पत्रकार को स्टेट्समैन में यह टिप्पणी करने के लिये प्रेरित हुआ कि "वकीलों की हड़ताल न्याय में विलम्ब कर रही है"।[2] मोटे तौर पर समाचार पत्रों ने हड़ताल के प्रयोजन और स्वयं हड़ताल के लिये बहुत कम सहानुभूति प्रकट की। एक न्यायशास्त्री ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए "बार के सदस्यों ने यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए हड़ताल की"।

2.14 हड़ताल के कुछ कारणों की, इस दावे को दृष्टि में रखते हुए कि ऐसे न्यायपूर्ण और विवशकारी कारण हैं जिनके लिये यदि बार हड़ताल का आश्रय नहीं लेती है तो वह अपने कर्त्तव्य से विमुख समझी जाएगी, जांच की जाती है। गुजरात उच्च न्यायालय बार इस आधार पर लंबी हड़ताल पर थी कि कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति की पुष्टि नहीं की गई थी। गुजरात राज्य में सारी बार दो मास के लिए इसलिये हड़ताल पर थी कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सिफारिश किए गए व्यक्ति सरकार द्वारा नियुक्त नहीं किए गए थे। दिल्ली उच्च न्यायालय विधिज्ञ संगम ने इस आधार पर हड़ताल की कि कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति को स्थायी हैसियत में नियुक्त किया जाए। एक बार फिर हड़ताल की गई जब एक जिला न्यायाधीश को उससे ज्येष्ठ न्यायाधीश के स्थान पर प्रोन्नति दे दी गई। इलाहाबाद विधिज्ञ संगम ने, मुख्य न्यायमूर्ति पर न्याय की हत्या का आरोप लगाते हुए, मई 1980 में 13 दिन के लिये तब हड़ताल की जब तत्समय मुख्य न्यायमूर्ति ने उच्च न्यायालय के प्रशासन में कई सुधार आरम्भ किए। नवंबर, 1987 में दिल्ली उच्च न्यायालय विधिज्ञ संगम के सदस्यों ने सिविल वादों की बाबत उच्च न्यायालय द्वारा अपनी धनीय अधिकारिता को 5 लाख रुपए तक बढ़ाने के उसके विनिश्चय के विरुद्ध अभ्यापति करते हुए हड़ताल की। हड़ताल से उच्च न्यायालय में कार्य इस विस्तार तक अस्तव्यस्त हो गया कि 20 सिविल वाद जिन्हें हड़ताल के प्रथम दो दिनों में विनिश्चित किया जाना था या साक्ष्य अभिलेखन के लिए रखा गया था सुनवाई के लिये संभवतः 1991-92 में लिए जाएंगे।[3] राजधानी में सभी न्यायालयों में विधि-व्यवसाय करने वाले अधिवक्ताओं ने पुलिस द्वारा एक वकील को हथकड़ी लगाने और पश्चात्वर्ती दो घटनाओं के विरुद्ध, जिनमें पुलिस ने अभिकथित लाठी चार्ज किया, अभ्यापति करते हुए हड़ताल की। कई बार, विचारण में थोड़ी सी शीघ्रता प्राप्त करने के लिये बार पर विधि की आत्मा और पाठ, दोनों को नाश करने वाला प्रबल प्रभाव डालती है।[4] कुछ दिन पहले राजधानी में तीस हजारी न्यायालयों में विधि-व्यवसाय करने वाले वकील ने अपनी हड़ताल को पुनरुज्जीवित कर दिया जिससे हिंदुस्थान टाइम्स ने अपने संपादकीय में यह टिप्पणी की कि अपनी अत्यंत प्रतिक्रिया से वकीलों ने जनता को बहुत असुविधा में डाल दिया है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपनी कार्रवाई में कोई परिवर्तन करने के इच्छुक नहीं हैं। समाचार पत्र ने मनमानी करने के इस प्रयत्न का विरोध करने के लिये जनता का आह्वान किया क्योंकि इसके अनुसार दिल्ली में वकील देश के शेष भागों में अपने समाज के लिये एक बुरा उदाहरण स्थापित कर रहे हैं।[5] अहमदाबाद दंड न्यायालय विधिज्ञ संगम के सदस्यों ने इस आधार पर हड़ताल की कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 और 151 के अधीन शक्तियां कार्यपालक मजिस्ट्रेटों से वापस ली जा रही हैं और जहां कहीं क्षेत्र में पुलिस आयुक्त नियुक्त किया गया है वहां पुलिस आयुक्त को प्रदान की जा रही हैं। दिल्ली में अपने विद्वान मित्रों से संकेत प्राप्त करने पर मुम्बई और साथ लगे ठाणे जिला में 17,000 से अधिक अधिवक्ता एक वकील पर पुलिस के हमले और उसको हथकड़ी लगाने के विरुद्ध अभ्यापत्ति करने के लिये न्यायालय से अनुपस्थित रहे।[6] इस लिये ऐसा प्रतीत होता है कि वे कारण जिनसे हड़ताल के लिये प्रकोपन मिला किसी भी व्यक्ति को व्याकुल कर देंगे।

2.15 उत्तरों का विश्लेषण करते हुए पहली बात जो हमारे मन में आती है वह यह है कि मोटे तौर पर विधिक वृत्ति के सदस्य व्यक्तिगत रूप से या संगठनों के माध्यम से हड़ताल करने के अधिकार का, जिसका कड़ाई से और स्वपवित्रता से दावा किया जाता है, त्याग करने के इच्छुक नहीं थे। हड़ताल के अधिकार का मूल अधिकार के रूप में दावा किया जाता है जो प्राधिकारियों के अन्यायपूर्ण और अनुचित कार्यों के प्रति अभ्यापत्ति व्यक्त करने का एक अहिंसात्मक उपाय है। यह दावा किया गया कि यदि वकीलों से हड़ताल करने का अधिकार ले लिया जाता है तो उससे वकील निपुंसक हो जाएंगे जिससे भारतीय लोकतंत्र संकटग्रस्त हो जाएगा। वार्ता में व्यक्त प्रतिकूल विचार का वर्णन आवश्यक है :

> "वकील एक श्रेणी के रूप में यह विश्वास करने लगे हैं कि वे साधारण नागरिकों से सुभिन्न विशेष बर्ताव के हकदार हैं क्योंकि उनकी न्यायालयों तक पहुंच है और वे दिन प्रतिदिन न्यायाधीशों से सीधा व्यवहार करते हैं। उत्तरोत्तर की गई हड़तालों से, जिनके कारण सरकार या न्यायालयों द्वारा उनकी मांगें स्वीकार कर ली गई हैं, उन्हें यह अस्त्र मिल गया है जिसके प्रयोग से न्याय प्रणाली का चक्का जाम करने की स्थिति में हैं।"

विधिक वृत्ति द्वारा यह कहा गया कि हड़ताल न्यायालय के विरुद्ध नहीं। बल्कि सरकार की कार्रवाइयों के विरुद्ध है। किन्तु यह और दावा भी किया गया कि यदि न्यायपालिका के किसी सदस्य के प्रति अनुचित बर्ताव किया जाता है तो बार का यह कर्त्तव्य है कि वह हड़ताल का आश्रय लेकर अपना रोष प्रकट करे।

2.16 उन व्यक्तियों ने, जो किसी न किसी तरह न्यायालय और स्वैच्छिक संगठनों से सम्बद्ध थे, वकीलों की हड़ताल के बारे में प्रतिकूल टिप्पणी की। यह कहा गया कि बार के सदस्यों के लिये किसी कारण से जिसके अन्तर्गत सरकार द्वारा न्यायपालिका के साथ कोई अनुचित बर्ताव भी है, हड़ताल करना उचित नहीं है। साधारण तौर पर यह कहा गया कि वकीलों की हड़ताल से केवल वादियों को अक्षम्य और अप्रवर्तनीय अपहानि हुई और अंततोगत्वा इससे न्याय प्रशासन प्रणाली दुर्बल होती है।

2.17 स्मरण रहे कि विधि आयोग न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका की जांच कर रहा है। इस आवर्ती हड़ताल का क्या परिणाम है? उपलब्ध आंकड़ों से दर्शित होता है कि यदि विधिक वृत्ति की दृष्टि से हड़ताल पूर्ण रूप से न्यायसम्मत और विवशकारी कारण से थी तो भी इसकी संदिग्ध विशिष्टता बकाया मामलों में अतिवृद्धि करने की थी और उसके शिकार न्याय के उपभोक्ता अर्थात् वादी थे जिनके मामले सुनवाई के लिये नहीं लगाए जा सके और जाने वाले कई वर्षों तक नहीं लगाए जा सकेंगे। 31-12-1987 और 30-6-1988 के बीच भारत के उच्चतम न्यायालय और दिल्ली उच्च न्यायालय में बकाया मामलों में अतिवृद्धि की बाबत सांख्यिकीय जानकारी से यह सिद्ध होता है जिस अवधि के दौरान राजधानी में लगभग सभी न्यायालयों में वकील पर्याप्त रूप से लंबी अवधि के लिये हड़ताल पर थे। 31-12-1987 को भारत के उच्चतम न्यायालय में 1,75,748 मामले लंबित[7] थे। 30-6-1988 को भारत के उच्चतम न्यायालयों में 1,85,950 मामले लंबित[8] हैं। इस प्रकार छह मास की अवधि में लंबित मामलों में 10,202 मामलों की वृद्धि हुई है। यदि वर्तमान ग्राफ से वर्षवार[9] लंबित मामलों की पूर्व ग्राफ से तुलना की जाए तो जो बात सामने आती है वह यह है कि यह अचानक वृद्धि भारत के उच्चतम न्यायालय में भी केवल वकीलों की हड़ताल के कारण हुई मानी जा सकती है। इसी प्रकार दिल्ली उच्च न्यायालय में जहां वकील हड़ताल पर थे, 31-12-1987 को 77,444 मामले लंबित थे और 30-6-1988,[10] वे बढ़कर 82,712 हो गए। पश्चात्कथित मामलों में वे मामले सम्मिलित नहीं हैं जो फाइल किये गए थे किन्तु रजिस्टर नहीं किये गये थे। क्या इन कठोर तथ्यों को देखते हुए यह दावा ग्रहण किया जा सकता है कि हड़ताल न्याय प्रशासन को शक्तिशाली बनाने के लिये थी? न्यूनतम बात जो ऐसी स्थिति से उत्पन्न होती है वह यह है कि वकीलों की हड़ताल किसी भी प्रकार न्याय प्रशासन को शक्तिशाली न बनाकर इसे दुर्बल बनाती है।

2.18 अगला विषय जिस पर भयंकर वार्ता जिसमें प्रत्येक पक्ष ने कड़ा रुख अपनाया वह विधिक वृत्ति के सदस्यों पर विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक अधिकारिता के बारे में है। प्रश्नावली के प्रश्न 11 में बार के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता के बारे में वार्ता आमंत्रित की गई थी। प्रश्न वृत्ति की उपभोक्ता को सेवा की जिम्मेदारी की दृष्टि से तैयार किया गया था। यह विचार व्यक्त किया गया कि अनुशासनिक अधिकारिता के विधिज्ञ परिषद् को अंतरण से सदस्यों पर बार के नियंत्रण में दुर्बलता आई है और इसलिये यह जांच करने का प्रयत्न किया जाए कि क्या यह अधिकारिता उच्च न्यायालय को अंतरित कर दी जाए।

2.19 अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अध्याय 5 के प्रवृत्त होने से पूर्व बार के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता भारतीय विधिज्ञ परिषद् अधिनियम, 1926 की निरसित धारा 10 से 13 के अधीन उच्च न्यायालय में निहित थी। मांग उसकी थी जिसे कुलीन व्यक्ति का न्याय कहा जाता है जिससे अनुशासनिक अधिकारिता, उच्च न्यायालय की अधिकारिता को समाप्त करके विधिज्ञ परिषद् को प्रदान की गई। वार्ता में उन व्यक्तियों के जो अधिकारिता का उपभोग कर रहे हैं और उनके बीच जो परिवर्तन चाहते हैं परस्पर विरोधी स्थितियां प्रकट हुईं। विधिज्ञ परिषदें साधारणतया अनुशासनिक अधिकारिता में किसी परिवर्तन के पूर्णतया विरुद्ध थीं, दूसरी ओर न्यायाधीश बहुत महसूस करते थे कि उच्च न्यायालयों की अनुशासनिक अधिकारिता प्रत्यावर्तित की जानी चाहिये। वे व्यक्ति जिन्होंने प्रश्नावली के उत्तर दिए और कुछ स्वैच्छिक संगठन उच्च न्यायालयों की अनुशासनिक अधिकारिता के प्रत्यावर्तन के पक्ष में थे। एक स्वैच्छिक संगठन ने यह प्राख्यान किया कि 'विधिज्ञ परिषदों की अनुशासनिक समितियों के समक्ष लंबित अधिकतर मामले अधिवक्ताओं के विरुद्ध वादियों की शिकायतों के हैं। ऐसी शिकायतों का इस समय वृत्ति कमाइयों द्वारा मूल्यांकन और विनिश्चय स्वयमेव व्यंग्यपूर्ण और आश्चर्यजनक हैं'। विधिज्ञ परिषदों को उस प्रकार सक्रिय नहीं किया जाता जिस प्रकार उन्हें होना चाहिये उसका एक कारण यह है कि 'विधिज्ञ परिषदों और

बार की आलोचना का अभाव है क्योंकि जनता दबाव डालने वाले समूह से डरती है, न्यायाधीश भी उनसे डरते हैं, तब कोई व्यक्ति ऐसा करने का कैसे साहस कर सकता है।[1] यह एक विचार था जो एक दूसरे स्वैच्छिक संगठन द्वारा व्यक्त किया गया। तीसरे स्वैच्छिक संगठन ने यह सुझाव दिया कि विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिये या तो शिकायत-कर्ता को अनुशासनिक समिति का सदस्य होने की या अनुशासनिक समिति में अपना प्रतिनिधि नाम-निर्दिष्ट करने की शक्ति होनी चाहिये।'

2.20 विधि आयोग को एक विद्वान की विशेषज्ञीय स्वरूप की सहायता थी जो कई वर्षों तक भारत का विधिज्ञ परिषद् से निकट रूप से सहबद्ध था। उसका विचार है : "वृत्तिक अनुशासन और नीचि विषयक आचरण के मानकों के पर्याप्त रूप से प्रवर्तन का अभाव उपर्युक्त बात से निकट रूप से संबद्ध है। वृत्ति के बाहर बहुत कम लोगों को गलती करने वाले अधिवक्ताओं को दंड देने की विद्यमान पद्धति ज्ञात है। यदि किसी को अधिवक्ताओं में कई बार जानकारी में आए व्यति-क्रमों और अनुशासन की मात्रा ध्यान में रखती हो तो कुलीन समूह न्याय सफल नहीं रहा है। दिए गए दंडों के बारे में कहा जाता है कि वे बहुत कम थे जिन्हें कई मामलों में उच्चतम न्यायालय[11] को ठीक करना पड़ा। मामलों को प्रकाशित नहीं किया जाता है और लोग कई वकीलों के जिन पर अपने जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति के लिये आश्रित हैं, कुकर्मों की बाबत अंधेरे में रहते हैं। बहुत से अपावन आचरण जैसे 'पीठ का नियत किया जाना' 'फीस में भागीदारी' आदि अपावन आचरण के रूप में भी नहीं माने जाते जिससे वे अनुशासनिक अधिकारिता के अंतर्गत आ जाएं। इसके अतिरिक्त हड़ताल और राज्य और स्थानीय स्तर पर न्यायालयों का बहिष्कार अधिवक्ताओं की नियमित विशेषता हो गई है जो राजनीतिक और प्रादेशिक आधारों पर संघ बना रहे हैं। अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति की उच्च वृत्तिक मानकों की एकीकृत बार, के लिये अनुरक्त आशा अधिवक्ताओं के एक विशिष्ट समूह के कार्यों और लोपों से धीरे-धीरे समाप्त हो रही है——————————स्थिति ऐसी है कि वृत्तिक आचरण और शिष्टाचार के नियमों का पुनरीक्षण न केवल वृत्ति के सदस्यों के हितों के लिये ही नहीं अपितु मुकदमेबाजी करने वाली जनता के लिये भी आवश्यक है।—————— अनुशासनिक मामलों के बारे में उच्च न्यायालयों के पर्यवेक्षण को बार के हठी सदस्यों से जिम्मेदारी प्रवर्तित कराने के लिये कम से कम सीमित रीति में तो पुनरूज्जीवित करना पड़ सकता है।

2.21 निस्संदेह यह सत्य है कि अधिवक्ता अधिनियम की धारा 38 भारत की विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति के विनिश्चय से व्यथित, यथास्थिति, किसी व्यक्ति की प्रेरणा पर या भारत के अटर्नी जनरल या महाधिवक्ता की प्रेरणा पर भारत की विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति के विनिश्चय पर भारत के उच्चतम न्यायालय को अपीली अधिकारिता प्रदान करती है। अपीली अधि-कारिता में दंड में परिवर्तन करने की शक्ति निहित है जिसका निर्वचन इस प्रकार किया गया है कि उसके अंतर्गत दंड में वृद्धि करने की शक्ति भी है। इस बात पर विचार करना चाहिये कि क्या यह अधिकारिता मुकदमेबाजी करने वाली जनता की कुलीन व्यक्ति के न्याय के परिणाम की बाबत आशंका को दूर करने के लिये पर्याप्त है। इस पहलू की विधि की अन्य व्यक्तियों के साथ वादियों के प्रति जिम्मेदारी की दृष्टि से जांच करना बराबर आवश्यक है।

2.22 वार्ता का एक और पहलू जिसकी जांच करना अपेक्षित है मुकदमेबाजी के खर्च के संदर्भ में है जो वादियों को इस समय[12] सहन करना पड़ता है। वर्तमान प्रसंग में इस पहलू की जांच इसके केवल एक अंग अर्थात् वकीलों की फीस की बाबत की जा रही है। प्रश्नावली की प्रश्न सं० 14 यह था कि क्या उन फीसों की एक मानक सूची रखना वांछनीय है जो वकीलों द्वारा मुवक्किलों से प्रभारित की जाएंगी। यदि राय ऐसे मानकीकरण के पक्ष में हो तो उसे प्रवर्तित करने की रीति का सुझाव देने के लिये अनुरोध किया गया था।

2.23 झुकाव फीसों के मानकीकरण के पक्ष में नहीं है। राय इससे भिन्न थी कि इसे वांछनीय होना चाहिये किन्तु असाध्य नहीं, क्योंकि न केवल प्रत्येक व्यक्ति के बल्कि प्रत्येक परिक्षेत्र में भी रहन सहन का खर्च और रहन सहन के मानक भिन्न हैं। दूसरी ओर यह कहा गया कि 'फीसों की, जो मुवक्किलों से प्रभारित की जा सकती है, एक मानक सूची की आवश्यकता बहुत सीमा तक महसूस की जा रही है किन्तु फीसों की सूची तैयार करना और उसे प्रवर्तित करना महत्वपूर्ण है।[1] एक राज्य

विधिज्ञ परिषद् की यह राय थी कि यदि ऐसा उपाय किया जाता है तो उससे अधिक भ्रष्टाचार होगा और काले धन की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा। स्वैच्छिक संगठनों, ने दूसरी ओर यह सुझाव दिया कि उन्हें या पर-विधिक निकायों को विधिक सहायता पाने वाले व्यक्तियों की सहायता करने के लिये न्यायालय में उपस्थित होने में सम्यक् प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। दीन व्यक्तियों को विधिक सहायता के क्षेत्र में कार्य कर रहे स्वैच्छिक निकाय वकीलों को देय फीसों के मानकीकरण के पक्ष में थे। फीसों की सूची निश्चित करने में यह सिफारिश की गई कि इसे विधिक वृत्ति के संगठित निकायों से परामर्श के पश्चात् निश्चित किया जाना चाहिये। एक समिति होनी चाहिये केवल जिसे ही फीस का संदाय किया जाएगा और वह समिति वकील को लेखा देगी।

2.24 कोई विनिर्दिष्ट एकल दृष्टांत देना कठिन है फिर भी कुछ ज्येष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा प्रभारित की जा रही फीस बहुत अधिक है। ऐसा होता है कि निगमित सेक्टर प्रतिभावान वकीलों को बहुत अधिक खर्च पर प्रतिधारित करने के लिये राजी है। इस प्रकार संदाय एक संस्कृति के रूप में विकसित हो जाता है और नीचे तक चला जाता है। निस्संदेह भारत की विधिज्ञ परिषद् द्वारा एक फीस सूची तैयार की गई है किन्तु विधि आयोग को व्यक्त किये विचारों से पता चलता है कि इसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। फीसों के मानकीरकरण को विहित करने का प्रयत्न मात्र ही नहीं बल्कि मशीनरी का प्रवर्तन अधिक सुसंगत हो जाएगा।

अध्याय 3

निष्कर्ष और सुझाव

3.1 एक ओर विधिक वृत्ति की बिना रुकावट प्रशंसा होती है और दूसरी ओर उसकी निन्दा पर भी कोई बाधा नहीं है। दोनों से मुक्त रहते हुए विधिक वृत्ति की भूमिका की इसे न्यायोन्मुख और लोकोन्मुख बनाने की दृष्टि से वस्तुपरक रूप से और पक्षपात रहित रीति से जांच की जाए।

3.2 समाजवादियों और विश्लेषजों ने विधि विद्यालयों के वातावरण में कुछ ऐसी बात पाई है जो एक परिरूपित वस्तु निर्माण करने की दिशा में चलते हैं जिसमें परिवर्तन संभव नहीं है। इस संदर्भ में चार्ल्स रीच ने कहा :

> "यह समझते हुए कि वे विधि विद्यालय में अध्ययन कर रहे हैं----------(छात्रों) को यह पता चलता है कि उनसे ऐसे तार्किक व्यक्ति की प्रत्याशा की जाती है जो किसी व्यक्ति को इस लिये सुनते हैं कि वे उनसे असहमति प्रकट करें; वे प्रभावित होने के स्थान पर विश्लेषक व्यक्ति होते हैं जो जानकारी को ग्रहण करने के स्थान पर अति प्रभाव डालते हैं; और इसके अतिरिक्त गहन रूप से प्रतियोगी और स्वप्रख्यानकारी होते हैं। विधि विद्यालय में प्रवेश पाने से पूर्व उनमें से कई इस प्रकार के व्यक्ति नहीं होते हैं आरंभ में उनकी रोष और निराशा से और बाद में बिना आपत्ति प्रतिक्रिया होता है। वास्तव में वे विधि विद्यालय में होते हुए ही "अधिक मूर्ख" हो जाते हैं क्योंकि उनके मन की भावना सीमित होती है, संवेदना से उत्तर देने और प्रभावित होने की उनकी योग्यता कम हो जाती है और उनके अध्ययन और बोध की परिधि उत्तरोत्तर संकीर्ण हो जाती है"।[1]

3.3 विवश होकर जार्ज बर्नार्ड शाह ने कहा "सभी वृत्तियां जनसाधारण के विरुद्ध षडयंत्र हैं----------ऐसे समाज में जहां न्याय कम से कम सिद्धांत रूप में एक उच्चतम आदर्श माना जाता है," यह कहा जाता है कि "वकील विधि को अपने फायदे के लिये मोड़ने के लिये सदैव तकनीकी और कभी-कभी संदिग्ध उपायों की तलाश में रहते हैं।"[2] वृत्ति के विरुद्ध आलोचना उतनी ही प्राचीन है जितनी विधि स्वयं है। विलियम शेक्सपीयर ने कहा "पहला कार्य जो करना चाहिये वह यह है कि हमें सभी वकीलों की हत्या कर देनी चाहिये"।

3.4 इस आलोचना से दूर रहते हुए हमारे देश में विधिक वृत्ति की भूमिका का निर्धारण संवैधानिक आज्ञा के संदर्भ में करना है जैसी वह संविधान के अनुच्छेद 39क में अधिकथित है। यह राज्य का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के

आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।[3] न्याय प्रशासन को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका अनुच्छेद 39 के आशय के अनुकूल होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में, किसी विरोधी प्रणाली में जैसी वह न्याय प्रशासन का आधार होते हुए न्यायालयों में प्रचलित है, विधिक वृत्ति की भूमिका को न्याय की तलाश में सभी वादियों के लिये समान अवसर सुनिश्चित करना चाहिये। इस प्रक्रिया में आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित नहीं रहना चाहिए। विधिक वृत्ति से यह सुनिश्चित करने की आशा की जाती है कि कोई व्यक्ति जिसके पास न्याय प्राप्त करने के लिये आर्थिक साधन नहीं हैं विधि न्यायालयों से इसलिये मुख न मोड़ ले कि न्याय प्राप्त करने के लिये वह आवश्यक व्यय उपगत करने की स्थिति में नहीं है। यह तथ्य भी बराबर महत्वपूर्ण है कि सामाजिक निर्योग्यताएं किसी व्यक्ति को न्याय केन्द्रों तक पहुंच से वंचित न करें विधिक वृत्ति जिनका एक आंतरिक और अभिन्न अंग है। राज्य को, जिसने विधिक वृत्ति को अपने प्रवेश और प्रवेश के लिये अर्हता का विनियमित करने और अपने आंतरिक अनुशासन का विनियामक होने की अनुज्ञा देकर उसे एकाधिकार प्रदान किया है, अपने आपको इस प्रकार संचालन करना चाहिये जिससे न्याय प्राप्त करने के लिये प्रत्येक सुविधा प्राप्त हो। इस बाधता से उन्मोचित होने के लिये विधिक वृत्ति को अपनी सेवाएं उन दीन व्यक्तियों को उपलब्ध करानी चाहिये जो विधिक सेवाओं के खर्च का अन्यथा संदाय नहीं कर सकते हैं। न्याय प्राप्त करने के लिये ऐसे व्यक्तियों की विधिक वृत्ति के मार्ग में खर्च और उनकी अन्य सामाजिक निर्योग्यताएं बाधा न हों। वृत्ति को स्वयं अपना पब्लिक सेक्टर विकसित करना चाहिये। संक्षिप्त में कथन करते हुए ऐसे अर्थोपाय किये जाने चाहिये जिनसे वृत्ति न्याय की क्वालिटी की अभिवृद्धि करने में और समाज में ऐसे परिवर्तन लाने के लिये जो समता के लक्ष्यों के अनुरूप है जिनके प्रति हम संवैधानिक रूप से तथा अपनी नीति विषयक उद्देश्यों से बद्ध हैं, अर्थपूर्ण ढंग से कार्य करे। न्याय प्रशासन को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका इस परिसीमाओं के भीतर स्पष्ट की जानी चाहिये।

3.5 एकाधिकार के प्रति समाज द्वारा इसलिये रोष प्रकट किया जाता है क्योंकि वैकल्पिक सेवाओं की उपलब्धता के अभाव में एकाधिकार के उपभोक्ताओं का शोषण किया जा सकता है। जिम्मेदारी के दायित्व के बिना एकाधिकार से अत्याचार होने की संभाव्यता है। यह बात निर्विवाद है कि विधिक वृत्ति स्वरूप में एकाधिकारिक है। इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यदि वृत्ति स्वरूप में एकाधिकारिक है तो यह अपनी सेवाओं के उपभोक्ताओं के प्रति जिम्मेदार होनी चाहिये और उपभोक्ता वर्ग केवल वादियों तक सीमित नहीं होना चाहिये। न्यायालय प्रणाली को भी जिसका यह पूर्णांकी भाग है, इसकी सेवा का उपभोक्ता कहा जा सकता है। इसलिये संपूर्ण समाज के प्रति एकाधिकारिक वृत्ति की जिम्मेदारी के व्यापक सिद्धांत के अतिरिक्त विधिक वृत्ति को वादियों और न्यायालय प्रणाली के प्रति जिम्मेदार बनाने के लिये अर्थोपाय करने चाहिये।

3.6 विधिक वृत्ति भारतीय समाज के सामाजिक राजनीतिक शासन में केन्द्रीय बिन्दु रहती है इसकी संरचना और प्रक्रिया की या तो बातों के विद्यमान क्रम को परिवर्तित करने या बनाए रखने की प्रवृत्ति होती है। विधिक वृत्ति के सदस्य संसद् में, जिसमें भारत राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य को प्रभावित करने वाले अतिमहत्वपूर्ण विनिश्चय लेने का कार्य निहित है, सब से बड़ा समूह है। इसलिये विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जीवन पर वह एकल अधिकतम असर डालते हैं। इसलिये विधिक वृत्ति के सदस्यों का विधि बनाने में विनिश्चयात्मक स्वर होता है। इसलिये वे विधियों को वह रूप देकर जो न्याय की अभिवृद्धि करे न्याय की क्वालिटी की अभिवृद्धि कर सकते हैं। यह सत्य है कि विधिक वृत्ति के सदस्यों के वृत्तिक निकाय आलोचना के प्रति संवेदनशील है क्योंकि उनमें से कुछ ने प्रश्नावली को प्रेरक विचार किया। हड़ताल के मामले में भी वृत्ति के सदस्यों ने प्रख्यान किया कि हड़ताल करने का अधिकार प्रश्नगत नहीं हो सकता। मन पर यह प्रभाव बनने की संभाव्यता है कि वृत्ति के सदस्य इस बात के होते हुए भी कि उनके रूख से कई बार लोकहित की हानि होती है अपने हितों की रक्षा करने के लिये उत्सुक होते हैं वृत्ति को वृत्ति और मंडली या कारबार के बीच अंतर बनाए रखना चाहिये।

3.7 इस लिए जो प्रश्न पूछा जाना चाहिए वह यह है कि न्याय की क्वालिटी की अभिवृद्धि करने के लिए संगठित वृत्ति व्यक्तिगत रूप से या संयुक्त रूप से क्या कर सकती है ? उत्तर अनुच्छेद 39क में दिए गए आशय में है।

3.8 यह एक निर्विवाद बात है कि किसी संगठित वृत्ति में कुछ व्यक्ति अवश्य ही ऐसे होंगे जो वृत्ति के उच्च मानक बनाए रखने में असमर्थ होंगे। कुछ मामलों में साक्ष्य से वकील-मुवक्किल संबंध में मलिन स्थिति प्रकट होती है। यह स्वयं संपूर्ण वृत्ति को अपराधी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता किन्तु इस पहलू की अनदेखी भी नहीं की जा सकती। यह ऐसी स्थिति में है कि वृत्ति की वादी और प्रणाली के प्रति जिम्मेदारी सामने आती है। बार के नेताओं को विधि न्यायालयों में उनके मामले लेने में स्वेच्छा से गरीब और निर्धन व्यक्तियों के भाग्य के बारे में विचार-पूर्वक चिंता दर्शित करनी चाहिए। उन्हें उन व्यक्तियों के इतिवृत्त के बारे में, जो वृत्ति के उच्च वृत्तिक मानक नहीं बनाए रखते हैं, अंतरावलोकन और आंतरिक विनियमन द्वारा उसकी जिम्मेदारी की जांच करने की भूमिका भी निभानी चाहिए। इसे समाज द्वारा अपनी परीक्षा करानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले वादी से यह समझने की आशा करना बहुत अधिक है कि उसके वकील से क्या आशा की जाती है और यदि वह महसूस करता है कि उसके साथ छल किया गया है तो उसके विरुद्ध शिकायत करे और उसके पश्चात् विधिज्ञ परिषद् के समक्ष अपनी शिकायत का अभियोजन करे। यह वृत्ति के लिए है कि वह स्वविनियमनकारी तंत्र की व्यवस्था करे जिससे वह गलती करने वाले किसी वकील की जानकारी प्राप्त करे और किसी व्यक्ति द्वारा शिकायत किए बिना उसके संबंध में कार्यवाही करे। वृत्ति और संपूर्ण समाज दोनों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना उसका प्रथम और सर्वप्रथम कार्य है। कम न किए जाने योग्य वृत्ति के न्यूनतम मानकों को बनाए रखना किसी के विरुद्ध शिकायत करने वाले समाज के सदस्यों पर नहीं छोड़ा जा सकता। यह आशा करना बहुत बड़ी बात है। जिम्मेदारी की व्यवस्था स्वविनियमनकारी तंत्र द्वारा की जा सकती है। इसमें न्यायालय में अनुचित और अवृत्तिक आचार, जो प्रणाली की क्षति करता है, सम्मिलित होना चाहिए।

3.9 इस समय की सर्वप्रथम अपेक्षा वृत्ति की खो गई गरिमा को वापस लाना है। निःसंदेह कुछ ऐसे भी समाज शास्त्री हैं जो यह विश्वास करते हैं कि विधिक वृत्ति की प्रतिष्ठा स्वतंत्रता के पश्चात् कम नहीं हुई है। यह कहा जाता है कि "उपलब्ध तथ्यों के परिशीलन से पता चलता है कि भारतीय वकीलों की जनता में स्थिति में स्वतंत्रता के पश्चात् कोई गिरावट नहीं आई है।[4] निःसंदेह वह इस निष्कर्ष पर यह प्राख्यान करके पहुंचता है कि "वकीलों की प्रतिष्ठा उपनिवेश विरोधी संघर्ष के संदर्भ में वृत्तिकों के रूप में नहीं बल्कि स्वतंत्रता संग्रामियों के रूप में थी। यह बात नहीं कि उनमें से कुछ का लाभकारी व्यवसाय नहीं था किन्तु जनता द्वारा उनका सम्मान उसका त्याग करने और उनके द्वारा प्रदर्शित परोपकार के सिद्धांत के कारण होता[5] था। दूसरी ओर स्वतंत्रता आंदोलन में वृत्ति की भूमिका की, यह प्राख्यान करके प्रशंसा की जाती है कि वृत्ति की गत दो शताब्दियों के सामाजिक-राजनीतिक इतिहास में धृष्ट और गतिमान सह-भागिता थी, किन्तु इस पृष्ठभूमि के मुकाबले में वर्तमान समय अंतर का चित्र प्रदर्शित करता है। विधि आयोग द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य के आधार पर वर्ष 1958 में एक निष्कर्ष निकाला गया कि "बार की दक्षता और मानकों में गिरावट आई है। वृत्ति में प्रवेश करने वाला नया वकील अपने विधिक कार्य में हीन, कम परिश्रमी और काम पाने की शीघ्रता में कहा जाता है[7]। तीन दशक पश्चात् एक प्रमुख गुजराती दैनिक समाचार ने विधिक वृत्ति के सदस्यों का अपने संपादकीय स्तम्भों में कजिया दलाल के रूप में वर्णन किया[8]। संपादक ने आगे यह कहा कि विधिक वृत्ति के सदस्य विवादों को तीव्रता देकर मुकदमेबाजी को और प्रोत्साहित करते रहे हैं।

3.10 विधिक वृत्ति के संगठन द्वारा मिलकर कार्य करते हुए वृत्ति के इस चित्र को चाहे यह कुछ लोगों के मन में ही हो मिटाने का गंभीर प्रयत्न करना चाहिए वृत्ति के सम्मान और विश्वसनीयता को न केवल समाज की दृष्टि में बल्कि मुकदमेबाजी करने वाली जनता की दृष्टि में भी पुनःस्थापित करने के लिए हर प्रयास करना होगा।

3.11 इसलिए पहला कदम जो लेना अपेक्षित है वह मुकदमेबाजी को प्रोत्साहित न करना बल्कि मुकदमेबाजी को कम करना है। विधिक वृत्ति की भूमिका विवादों का निपटारा है और केवल अंतिम बात के रूप में ही मामले को न्यायालय में जाने दिया जाना चाहिये। "मुकदमेबाजी को निरुत्साहित करो। जब कभी आप कर सकते हैं अपने पड़ोसियों को समझौते के लिए प्रेरित करो। उन्हें यह बताओ कि किस

प्रकार नाममात्र का विजयी वास्तव में फीस, खर्च और समय के अपव्यय में हानि उठाने वाला होता है। शांति-स्थापक के रूप में वकील को अच्छा पुरुष होने का उत्तम अवसर होता है। कारबार पर्याप्त होगा[9]।" वकील की भूमिका यहां स्पष्ट की गई है इस आरोप से बचने के लिए कि वकील विवादों को शाश्वत बना देते हैं वृत्ति के सदस्यों को मुकदमेबाजी को निरुत्साहित करने का जिम्मा लेना चाहिए, पक्षकारों को समझौते के लिए प्रेरित करना चाहिए और पक्षकारों पर इस बात का प्रभाव डालना चाहिए कि मुकदमेबाजी कितनी बेकार है। वकीलों की भूमिका का इससे बेहतर ढंग से संक्षिप्त वर्णन नहीं किया जा सकता।

3.12 इसी पहलू को एक दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है जब यह कहा जाता है कि विधिक वृत्ति के सदस्यों का नारा "माध्यस्थम् करो, मुकदमे बाजी न करो" होना चाहिए ; निस्संदेह कुछ लोगों की यह राय है कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों का स्वरूप विनाशकारी हो सकता है[10]। माध्यस्थम् कार्यवाहियों की बाबत भी इस कठोर कथन से विधिक वृत्ति के सदस्यों को निरुत्साहित नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसे न्यायाधीश द्वारा, जो पक्षकारों द्वारा चयनित किया गया हो, विवादों के निपटारे के एक ढंग के रूप में माध्यस्थम् न्यायालयों द्वारा विवादों के न्यायनिर्णयन पर अधिमान योग्य समझा गया था। इस कोण से देखकर पहले ही यह सिफारिश की गई है कि जैसे ही दावा करने की सूचना की तामील की जाती है दूसरे पक्षकार को वकील नामनिर्दिष्ट करना चाहिए और दोनों वकीलों को आपस में मिलना चाहिए और विवाद का निपटारा करने का प्रयास करना चाहिए या झगड़े के क्षेत्र को कम करने का प्रयास करना चाहिए और यह उनकी कानूनी और वृत्तिक दोनों बाध्यता होगी[11]। इस दृष्टिकोण से विधिक वृत्ति की भूमिका में अभिवृद्धि होती है और उसे प्राथमिक प्रक्रम पर विवाद का निपटारा करने के लिए न्यायालयों के हस्तक्षेप से पूर्व एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने को मिलती है जिससे मुकदमेबाजी से मुक्ति होती है।

3.13 मुकदमेबाजी करने वाली जनता और विधायकों के बीच यह व्यापक विश्वास है कि न्यायालय की कार्यवाहियों में वकीलों के हस्तक्षेप में मामलों को निपटारे में विलंब करने की प्रवृत्ति अंतर्निहित है। दूसरे शब्दों में न्यायालय में विलम्ब और अतिविस्तृत विधिक वृत्ति के सदस्यों के कारण मानी जा रही है। विवादों की शीघ्र निपटारा प्रभावी और दक्ष न्याय प्रशासन प्रणाली की मूल अपेक्षाएं हैं। इस समय प्रणाली अतिविस्तृत और विलम्ब से निर्विवाद रूप से ग्रस्त है। इसका दृष्टांत यह बता कर दिया जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय में मामले 1968 से लंबित हैं और इस वर्ष वे दो दशक पुराने हो गए हैं। 1975 की दांडिक अपीलें भी उच्चतम न्यायालय में लंबित हैं। इसी प्रकार 18 उच्च न्यायालयों में 1-1-1987 को 10 वर्ष से अधिक पुराने 30,970 सिविल मामले और 615 दांडिक मामले लंबित हैं। क्या किसी से एक पीढ़ी के लिए न्याय की तलाश में प्रतीक्षा करने की आशा की जा सकती है? किसी प्रणाली के बारे में जिससे मामलों का निपटारा या विवादों का निपटारा दशकों तक लंबित रहता है, यह कहा जा सकता है कि वह अपनी उपयोगिता से अधिक जीवित है। प्रणाली में मौलिक परिवर्तनों की आवश्यकता हो सकती है किन्तु वकीलों की भूमिका को कम किए बिना विवादों के निपटारे में लगने वाले समय को न्यूनतम करने का प्रयत्न करना चाहिए।

3.14 यह बार-बार दोहराया गया सुझाव है कि कुछ अधिकरणों और कुछ प्रकार के मामलों में वकीलों को उपस्थित होने से अपवर्जित कर दिया जाए। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1948 की धारा 36 की उपधारा (3) जैसे उपबंध के प्रति निर्देश करके इसको न्यायपूर्ण ठहराने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। इसमें यह उपबंध है कि अधिनियम के अधीन किसी सुलह कार्यवाही में या किसी न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में विवाद का कोई पक्षकार किसी विधि-व्यवसायी द्वारा अपना प्रधिनितित्व कराने का हकदार नहीं होगा। कुछ अन्य कानूनों में विशेष रूप से कृषि संबंधी सुधारों के संबंध में कानूनों में ऐसे ही उपबंध हैं। विधि आयोग इस विचार से सहमत नहीं है। विधिक वृत्ति के सदस्यों की उपस्थिति से पीठासीन न्यायाधीशों के पक्षपात वाले आचार पर अच्छा नियंत्रण रहता है। पीठासीन न्यायाधीश विधिक वृत्ति के सदस्यों को और विधिक वृत्ति के सदस्य न्यायाधीशों को नियंत्रित करने में असमर्थ होंगे। भूमिका अनुपूरक है। कुछ कार्यवाहियों में विधिक वृत्ति के सदस्यों को अपवर्जित करने के प्रयोग से न तो मामलों के शीघ्र निपटारे में उस का कुछ योगदान हुआ है और न ही विवादों का निपटारा अधिक संतोषप्रद रहा है। इसलिए अपवर्जित कोई उत्तर नहीं है। कार्यवाहियों में उपस्थित होने और उन के संबंध में कार्यवाही करते समय विधिक वृत्ति के सदस्यों की जिम्मेदारी से आवश्यकता पर आधारित कुछ मुकदमेबाजी में कई बार संभाव्य विलम्बकारी चालों पर कुशल नियंत्रण की व्यवस्था हो जायेगी, जैसे किराया अधिनियम के अधीन किराएदार की स्थिति जो बेदखली के संकट में है या किसी

नियोजक की स्थिति जब किसी पदच्युत कर्मचारी की बहाली की संभाव्यता है। यहां भी विलम्बकारी चालों का पूर्णतया त्याग करना चाहिए। और इस प्रयोजन के लिए पीठासीन अधिकारियों के हाथ समुचित उपबंधों द्वारा शक्तिशाली बनाने चाहिए जिससे मामलों के निपटारे में विलम्ब करने की इस प्रवृत्ति पर प्रभावी नियंत्रण किया जा सके।

3.15 एक और प्रवृत्ति जो हाल ही में दृष्टिगोचर हुई है विशेषकर वहां जहां अभिवचन मुफस्सिल न्यायालयों के लिए तैयार किये जाते हैं, यह है कि तुच्छ और न टिक सकने वाले सभी तथ्य और विधि के प्रश्न उठाए जाएं। मुफस्सिल न्यायालय में अभिवचन में कोई भी मामला ऐसा नहीं होगा जिसमें न्यायालय-फीस और परिसीमा के बारे में विवाद न किया गया हो। वे मानक प्रतिरक्षाएं हैं। यह वृत्ति में नए प्रवेश-कर्ताओं और परा वृत्तिक व्यवसायों के, जिन्हें अभिवचन तैयार करने के पुराने तरीकों में प्रशिक्षित किया गया है, ज्येष्ठ अधिवक्ताओं पर अत्यधिक आश्रित होने के कारण माना जा सकता है। "पहली दशा तो यह पीड़ा पहुंचाने वाली है और दूसरी दशा में यह नए प्रवेशकर्त्ताओं के लिए सदैव अपमानजनक है। दोनों दशाओं में इस वृत्तिक इंद्रजाल से मुक्त होने के लिए विधिक वृत्ति में नए प्रवेशकर्त्ता की अधिक अवधि के लिए प्रशिक्षण लेना होगा[13]।" जितना अधिक प्रशिक्षण होगा यह भय कि वह वृत्ति की सभी तकनीक समझा जाएगा, वास्तव में सत्य हो जाएगा। इसलिए विधिज्ञ परिषद् के लिए यह आवश्यक है कि वह वृत्ति में नए प्रवेशकर्त्ताओं के लिए वकील के तौर पर नामावलीगत होने से पूर्व प्रारूपण, प्रतिपरीक्षा, न्यायालय में भाव-भंगी और न्यायालय के समक्ष यथावत् और सही कथन करने के लिए प्रशिक्षण अवधि की व्यवस्था करें[14]। वृत्ति में नए प्रवेशकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के लिए न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए आशयित कुछ विषयों को अच्छी प्रकार अपनाया जा सकता है।

3.16 वास्तविक नियंत्रण के लिए, एक पक्षकार के पक्ष में या दूसरे पक्षकार के पक्ष में अधिनिर्णीत किए जाने वाले खर्च की मात्रा का विनिश्चिय करते समय पीठासीन न्यायाधीश को यह भी प्रमाणित करना चाहिए कि क्या न टिक सकने वाली और तुच्छ प्रतिरक्षा की गई थी जिसके कारण उन विवाधकों को विरचित करने की आवश्यकता हुई जिनपर पक्षकारों में विभेद था और उन पर विनिश्चय अभिलिखित करने में कितना समय लगा। यदि पीठासीन न्यायाधीश का समाधान हो जाता है कि तथ्यों और विधि के बारे में ऐसी तुच्छ और पूर्णतया न टिक सकने वाली प्रतिरक्षा की गई थी तो वह निर्णय में अभिलिखित की जानी चाहिए और उसके अनुसार ही खर्चे अधिनिर्णीत किए जाने चाहिएं।

3.17 मौखिक साक्ष्य को अभिलिखित करने में बहुत समय लगता है। कई बार यह देखने में आया है कि उसी प्रश्न पर बहुत बड़ी संख्या में साक्षियों की परीक्षा की जाती है, प्रतिपरीक्षा अतिविस्तृत, उलझन भरी और मत्स्यन अभियान के स्वरूप की होती है। उसी प्रश्न पर साक्षियों की बहुतायात के कारण, जिसके साथ उलझन भरी जांच के रूप में प्रतिपरीक्षा भी है न्यायालय का मूल्यावान समय प्रचुर मात्रा में लगता है। इस बात के प्रति यहां इसलिए निर्देश किया गया है क्योंकि विरोधी प्रणाली में विधिक वृत्ति के सदस्य स्थिति में न केवल सुधार करने के लिए योगदान कर सकते हैं बल्कि इस कलेश को दूर कर सकते हैं। वकीलों पर, यदि आवश्यक हो, तो कानून द्वारा एक कर्त्तव्य, यह विनिश्चिय करने के लिए, अधिरोपित किया जाना चाहिए कि कितने साक्षियों की परीक्षा करना अपेक्षित है। इसी प्रकार प्रतिपरीक्षा के बारे में भी बताया जाना चाहिए और वह विनिर्दिष्ट पूछताछ तक सीमित होनी चाहिए। इस दिशा में एक और सुधार जो वकीलों द्वारा किया जा सकता है कि वे किसी न्यायालय आयुक्त द्वारा साक्ष्य के अभिलेखन के लिए सहमत हो जाएं। यह किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है उस पर पूर्ण रूप से पहले विचार किया जा चुका है और विधि आयोग के इस निमित्त दृष्टिकोण को यहां उद्धरित करना आवश्यक नहीं है।[15]

3.18 अगला प्रक्रम जिस पर विधिक वृत्ति के सदस्य प्रभावी रूप से सहायता कर सकते हैं वह प्रक्रम है जहां साक्ष्य अभिलिखित कर लेने के पश्चात् मामले को सम अप किया जाता है। मौखिक तर्क कई दिन तक सुना जाता है। एक बार जब तर्क दूसरे दिन के लिए स्थगित किया जाता है तो पुनरोक्ति अपरिहार्य हो जाती है। इस प्रक्रम पर भी न्यायालय का मूल्यावान समय लगता है। और यह परिहार्य है। तर्क विनिर्दिष्ट प्रश्नों पर होना चाहिए जो न्यायालय को अग्रिम रूप से प्रस्तुत किए जाएं, केवल थोड़ा स्पष्टीकरण ही अनुज्ञात किया जाना चाहिए, प्रत्येक पक्ष का तर्क सुनने के लिए समय पहले ही निश्चित किया जा सकता है, दोनों पक्षकारों को लिखित कथन प्रस्तुत करने का अधिकार दिया जाना चाहिए और यही क्षेत्र है जहां विचारण के वेगवान और शीघ्र निपटारे के लिए केवल वकील ही योगदान कर सकते हैं। इस निमित्त नवीन परि-वर्तन की यदि आवश्यक हो, तो सिविल प्रक्रिया संहिता में उपबंध करके, बहुत पहले से आवश्यकता है।

3.19 अंतिम प्रक्रम जहां वकील प्रभावी रूप से योगदान कर सकते हैं अपील के अधिकार का प्रयोग है। यह भावना है कि कई बार उस पक्षकार को, जिसकी अभियोजन में पराजय होती है उसके वकील द्वारा, पराजय से कम हुए अभिमान के कारण अपील करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। वास्तव में, हारे हुए पक्षकार का वकील इस बात का उत्तम निर्णायक है कि क्या उसके मामले में कोई गुण है और क्या विचारण न्यायालय के न्यायाधीश ने उलटने योग्य कोई गलती की है और यह कि अपील से न्याय के हित की अभिवृद्धि होगी। उसको इस पहलू की बिना पक्षपात के जांच करनी होगी और उसे ईमानदारी और शुद्ध हृदय से सलाह देनी चाहिए कि अपील की जाए या न की जाए। यदि उसकी राय है कि मामला अपील के लिए उचित नहीं है तो वृत्ति के किसी अन्य सदस्य को यदि उससे संपर्क किया जाता है, विचारण वकील से पूछताछ करनी चाहिए कि उसने क्या राय दी है। यदि दूसरे वकील का उससे मतभेद है तो उसके अपने निष्कर्ष के समर्थन में विधिमान्य आधार होने चाहिए। अन्यथा मुवक्किल को अपील करने से निरुत्साहित करना चाहिए।

3.20 इसमें चर्चित विचारण की विशेषताएं वे हैं जिनमें वादियों के अतिरिक्त केवल वकीलों को ही भूमिका निभानी होती है। इसलिये न्याय प्रशासन को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका की जांच करते समय इन विशेषताओं का यहां उल्लेख किया जा रहा है। यदि वकील इसमें चर्चित क्षेत्रों में स्पष्ट, रचनात्मक और सृजनकारी भूमिका निभाते हैं तो वे वादी और प्रणाली दोनों के प्रति अपनी जिम्मेदारी सिद्ध कर रहे होंगे।

3.21 जैसे पहले बताया गया है समय आ गया है जब, क्योंकि प्रणाली ऐसे दबाव के अधीन है कि उसके टूट जाने की संभाव्यता है, विवादों के निपटारे के वैकल्पिक ढंगों की खोज करनी चाहिये। एक ऐसा ढंग जिसकी विधि आयोग ने जांच की है और पहले ही सिफारिश की है, विचारण-पूर्व सुलह कार्यवाही है। प्रत्येक पक्ष की ओर से उपस्थित होने वाले वकील ही मुवक्किल को मामला सुलह न्यायालय को निर्देशित करने के लिये सहमत होने के लिये प्रोत्साहन दे सकते हैं। विधि आयोग ने सभी नगर क्षेत्रों में ऐसे सुलह न्यायालय स्थापित करने की पहले ही सिफारिश की है। सुलह न्यायालयों की एक स्कीम हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा तैयार की गई है। वह विधि आयोग की पूर्वतर रिपोर्ट के साथ उपाबंध 5 के रूप में उपाबद्ध की गई है।[16] इसके अतिरिक्त संपूर्ण स्कीम की विस्तार से चर्चा की गई है।[17] स्कीम की सफलता विरोधी प्रणाली में पक्षकारों की सहायता करने वाले विधिक वृत्ति के सदस्यों पर पूर्णतया आश्रित है।

3.22 बार-बार यह कहा गया है कि विधिक वृत्ति स्वरूप में एकाधिकारिक है। एकाधिकार में उपभोक्ताओं को अपनी सेवाओं के लिये अप्रवेश्य की प्रवृत्ति होती है। वृत्ति को एकाधिकार वृत्ति क्यों कहा जाता है इसकी यहां चर्चा करना आवश्यक नहीं है, दो मुख्य बातें जो इसे एकाधिकार बना देती है उनका यहां उल्लेख किया जाता है। वृत्ति के सदस्यों को वृत्ति में प्रवेश को विनियमित करने की शक्ति है और केवल उन्हें ही, सिवाय कुछ विरले मामलों में ही जहां न्यायालय किसी अन्य व्यक्ति को न्यायालय में उपस्थित होने और अभिवचन करने की अनुज्ञा देता है, न्यायालयों में उपस्थित होने और अभिवचन करने का अधिकार है। यह अपनी सेवाओं के लिये प्रभारों का विनिश्चय कर सकती है। इसलिये यह कहने में कोई लाभ नहीं है कि वृत्ति का स्वरूप एकाधिकारिक है।

3.23 एकाधिकारों से साधारणतया घृणा की जाती है। एकाधिकार प्रतियोगिता से दूर रहता है। प्रतियोगिता के अभाव के कारण एकाधिकार में उसके द्वारा दी जाने वाली सेवाओं को प्रतिकूल रूप में प्रभावित करने की प्रवृत्ति हो जाती है। किसी बाजार अर्थव्यवस्था में प्रतियोगिता से कीमत और क्वालिटी दोनों की गारंटी होती है। एकाधिकार प्रतियोगिता को रोकता है।

3.24 अनुच्छेद 19(i) (छ) नागरिकों को कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने की गारंटी देता है। यह अधिकार अनुच्छेद 19 के खंड (6) के अधीन अधिरोपित किये जा सकने वाले युक्तियुक्त निर्बंधन के अधीन है। जब खंड (6) का आरंभ में प्रारूपण किया गया तो यह प्रश्न उठा कि क्या संघ या राज्य विधान मंडल वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिकारों की बाबत विधि[1] पारित करने के लिये सक्षम है। उत्तर प्रदेश राज्य ने "गवर्नमेन्ट रोडवेज" नाम और अभिनाम से सेवा चलाने के लिये परिवहन का एक एकाधिकार स्थापित किया। इस कार्रवाई को चुनौती दी गई और

इलाहबाद उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करते हुए कि ऐसे एकाधिकार से नागरिक अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन अपने अधिकारों से पूर्णतया वंचित हो जाते हैं, इसे विखंडित कर दिया। संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951 से नागरिकों का पूर्णतः या भागतः अपवर्जन करके या अन्यथा राज्य द्वारा या राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में किसी निगम द्वारा कोई व्यापार, कारबार, उद्योग या सेवा करने की राज्य को शक्ति प्रदत्त करने के लिये अनुच्छेद 19 के खंड (6) का संशोधन किया गया। इस संशोधन के पश्चात् उच्चतम न्यायालय के समक्ष फिर यह प्रतिवाद किया गया कि खंड (6) में किये गये संशोधन का प्रभाव, राज्य एकाधिकार सृजित करने के लिये पारित विधि को अनुच्छेद 19(6) के प्रथम भाग द्वारा विहित नियम के लागू होने से छूट देने का नहीं है।[18] विधान की विधिमान्यता अर्थात् उड़ीसा तेंदु पत्ता (व्यापार नियंत्रता) अधिनियम, 1961 को मोटे तौर पर मान्य ठहराते हुए न्यायालय ने यह संप्रेक्षण किया कि किसी एकाधिकार को सृजित करने वाली विधि के गुणों में उस व्यापार या कारबार की प्रकृति से परिवर्तन होगा जिसमें एकाधिकार सृजित किया जाता है। वह उस वस्तु की प्रकृति, वाणिज्य की प्रकृति जिनमें वह अंतर्वलित है, और कई अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करेंगे। इस चर्चा का प्रयोजन यह बताना है कि एकाधिकार में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति होती है। यदि विधिक वृत्ति स्वरूप में एकाधिकारिक है जैसी वह निर्विवाद रूप से है तो उसको संभावी दुरुपयोग से मुक्त करने के लिये उपबंध करना होगा। जिम्मेदारी दुरुपयोग पर एक रोक होगी।

3.25 विधि वृत्ति में विशेष रूप से या उसके संबंध में जिम्मेदारी किस बात से गठित होती है? साधारणतया जिम्मेदारी वृत्तिक आचार, अनुशासन और वृत्तिक विनियमन तक सीमित है। फिर भी कुछ लोगों की राय है कि विधिक वृत्ति की केवल आचार, अनुशासन और विनियमन से अधिक आभा होती है। इसमें वृत्तिक जिम्मेदारी का लोक ज्ञान और ऐसे लोक ज्ञान के प्रति वृत्तिक उत्तर निहित होता है। यह वृत्तिक सेवाओं द्वारा उत्पन्न की गई लोक प्रत्याशा से भी संबंधित होती है। विधिक वृत्ति के संदर्भ में संवैधानिक लक्ष्यों और उन्हें प्राप्त करने में विधिक वृत्ति की भूमिका की जिम्मेदारी का मापमान होगी। संक्षेप में अवधारक बात वृत्तिक हित का लोकहित के साथ संबंध और उनका अंतिम मेल है।[19] जिम्मेदारी के व्यास को इस प्रकार विनिर्दिष्ट करने में यह पता चला कि "अब तक सभी वृत्तियों का संचलन गड़बड़ी से संगठन, संगठन से, समेकन, समेकन से स्वायत्तता और एकाधिकार की ओर रहा है"। एकाधिकारिक प्रास्थिति प्राप्त कर लेने पर इसके विरुद्ध एक साधारण कोलाहल सुनने में आ रहा है। 'यह कहा जा रहा है कि वे अनन्य हैं, वे सर्वोत्तम लोकसमूह हैं, वे जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते, उन्हें जनता की मूल समस्याओं की भी कोई चिन्ता नहीं है। समाज के प्रति उनका योगदान न्यूनतम है। वकीलों और न्यायाधीशों, चिकित्सकों और शल्य चिकित्सकों, श्रमजीवी और अश्रमजीवी पत्रकारों, अध्यापन और अध्यापनेत्तर अध्यापकों का, उनके साथ बातचीत करने के लिये दुस्साहसी या मूर्ख किसी अनुभवी व्यक्ति को अभित्रस्त करने के लिए एक पवित्र मैत्री है। लोग धीरे-धीरे वृत्तियों से तंग आ गए हैं और अब जिम्मेदारी के लिये मांग हो गई है'।[20] अमरीका के भूतपूर्व प्रधान मंत्री जिम्मी कार्टर का विख्यात कथन स्मरण करते हुए कि "वकीलों ने वृत्ति के रूप में सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक सुधार दोनों का प्रतिकार किया है" यह कहा गया था कि बार को स्मरण रखना चाहिये कि उसके सदस्यों को एकाधिकार के लिये, जिसका वह उपभोग करती है, प्रथम दृष्टया न्यायोचित्य सिद्ध करना चाहिये और वृत्ति को पब्लिक सेक्टर में पुनः संगठित करना चाहिये जो दुर्बलतम मानवीय अधिकार तथा अभ्यापत्ति करने वालों के प्रति मानवीय दोषों के विरुद्ध उपचार सुनिश्चित करता है। लोक विधि, लोक वृत्ति से लोक हित में लोक प्रतिबद्धताओं की मांग करती है और उसकी गलतियों को अनाच्छादित करती है[21]।

3.26 गलती करने वाले वृत्ति के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता से एकाधिकार के विरुद्ध कुछ सीमा तक सुधार की व्यवस्था हो सकती है। जैसा पहले बताया गया है, अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अध्याय 5 के प्रवृत्त होने के पूर्व अनुशासनिक अधिकारिता भारतीय विधिज्ञ परिषद् अधिनियम, 1926 की धारा 10 और 13 के अधीन उच्च न्यायालय में निहित थी। वार्ता पर चर्चा करते समय स्पष्ट शब्दों में यह बताया गया है कि कुलीन व्यक्ति न्याय प्रणाली, प्रभावी होने से दूर है। यह विधिक वृत्ति की सेवाओं के उपभोक्ताओं का ही नहीं अपितु भारतीय विधिज्ञ परिषद् के कार्यकरण से निकट संबंध रखने वालों का भी विचार है। इसलिये अब समय है जब स्वयं वृत्ति के सदस्यों द्वारा उपभोग की जा रही अनुशासनिक अधिकारिता पर फिर से दृष्टि डाली जाए। कोई व्यापक

परिवर्तन करने का प्रयत्न किये बिना, राज्य विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति के विनिश्चयों का स्वप्रेरणा से पुनर्विलोकन करने की शक्ति उच्च न्यायालय में निहित की जानी चाहिये। या तो उच्च न्यायालय में अधिकारिता निहित की जानी चाहिये कि वह स्वप्रेरणा से ऐसा कर सके या शिकायतकर्ता की शिकायत पर कर सके। भारत की विधिज्ञ परिषद् को अपील और उससे आगे भारत के उच्चतम न्यायालय को अपील कई देशी वादियों की पहुंच से परे है। इसलिये एक लघु महत्व का कदम राज्य की विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति के विनिश्चय को स्वप्रेरणा से पुनर्विलोकन करने की शक्ति उच्च न्यायालय में निहित करके उठाया जाना चाहिये या शक्ति का प्रयोग शिकायतकर्ता की प्रेरणा पर या राज्य के महाधिवक्ता की प्रेरणा पर किया जाना चाहिये।

3.27 हड़ताल के दुखद प्रश्न पर उसके पक्ष में और उसके विरुद्ध सभी तर्क पर गंभीर विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि विधिक वृत्ति के सदस्यों को न तो अपनी शिकायतों को प्रकट करने के लिये और न ही उनको प्रिय किन्हीं अन्य प्रयोजनों के समर्थन में हड़ताल का साधारणतया आश्रय नहीं लेना चाहिये। न्यायपालिका के किसी सदस्य के साथ अनुमित बुरे बर्ताव के कारण हड़ताल से बचना चाहिये क्योंकि न्यायपालिका की स्वतंत्रता की प्राणभूत बातों को समाप्त करने की इसकी नाशक प्रवृत्ति है इसके कारण बताना आवश्यक नहीं है। कोई बिरला प्रयोजन बताया जा सकता है जिससे हड़ताल न्याय-सम्मत हो किन्तु इसे अंतिम अस्त्र के रूप में ही मानना चाहिये। यदि न्यायालय का प्रशासनिक पक्ष न्यायालय में व्यवसाय करने वाले विधिक वृत्ति के सदस्यों के मार्ग में गंभीर कठिनाइयां उत्पन्न कर देता है और उनका उपचार हो सकता है तो न्यायालय में व्यवसाय करने वाले विधिक वृत्ति के सदस्यों को कठिनाइयों को प्रकाश में लाना चाहिये और उन्हें, पीठासीन न्यायाधीश को सूचित करते हुए कि उनका उपचार हो सकता है उसकी जानकारी में लानी चाहिये। पीठासीन न्यायाधीश को यह जानकारी दिये जाने पर बार और पीठासीन न्यायाधीश के प्रतिनिधियों की एक बैठक बुलाने के लिये तुरन्त कदम उठाने चाहियें और समाधान ढूंढने के लिये विचार-विमर्श और बातचीत करनी चाहिये। यदि पीठासीन न्यायाधीश या न्यायालय का प्रशासनिक पक्ष वृत्ति के सदस्यों द्वारा भोगी जा रही कठिनाइयों की ओर, जो प्रशासन की जानकारी में लाई गई हैं, ध्यान नहीं देता है तो सूचना देनी चाहिये कि अंतिम अस्त्र के रूप में हड़ताल का आश्रय लिया जाएगा। इस आपवादिक स्थिति के सिवाय, पुलिस के साथ उनके विवाद, अन्य प्रशासनिक विभागों या कुछ अन्य शिकायतों के, जो न्यायालय प्रशासन के कारण नहीं मानी जा सकती हैं, आधार पर विधिक वृत्ति के सदस्यों द्वारा हड़ताल या पूर्णतया त्याग किया जाना चाहिये। यह सुझाव विधिक वृत्ति की सेवा के उपभोक्ताओं-हड़ताल से पीड़ित शिकार व्यक्तियों के बेहतर हित में दिया जाता है।

3.28 कोई भी व्यक्ति गंभीर रूप से यह प्रश्न नहीं कर सकता चाहे ऐसे कारणों से जिनका पूर्वानुमान लगाना कठिन नहीं है, इस बात का ठोस साक्ष्य मिलना कठिन है कि प्रभारित फीसें अत्यधिक हो गई हैं। वादियों का एक वर्ग ऐसा हो सकता है जो इतनी फीस दे सकता है। किन्तु इस लघुतम वर्ग को विधिक वृत्ति की संस्कृति और फीस बाजार का नाश नहीं करना चाहिये। यदि विधिक वृत्ति संसद् द्वारा पारित किसी कानून के कारण एकाधिकार का उपभोग करती है तो यह संसद् का कर्तव्य है कि वह विधिक वृत्ति के सदस्यों द्वारा दी जाने वाली सेवाओं के लिये फीस विहित करे। यह नहीं हो सकता कि वृत्ति को केवल विशेषाधिकार ही हों और कोई बाध्यता न हो। इसलिये अब समय है जब फीस की निम्नतम और अधिकतम सीमा विहित करने के लिये पहला कदम उठाया जाए। संगठित बार का प्रशासनिक विभाग होना चाहिये जहां कोई मुवक्किल जा सके, विहित फीस का संदाय करे और वकील की सहायता प्राप्त करे। उसके पश्चात् फीस के बारे में कोई बातचीत न हो और कोई अधिक संदाय न किया जाए। यह एक क्षण के लिये भी सुझाव नहीं दिया जा रहा है कि कोई क्रांतिकारी सुझाव कार्यरूप देने के लिये दिया जा रहा है। अपने आसपास देखने से पता चलेगा कि कई देश हैं जिनमें यह प्रणाली प्रचलित है[22]।

3.29 इस सिफारिश के समर्थन में, कि विधिक वृत्ति द्वारा उसकी सेवाओं के लिये प्रभार्य फीसें निम्नतम और अधिकतम सीमा के अधीन मानकीकृत की जानी चाहिये, एक अतिरिक्त बात यह है कि संगठित वृत्ति के प्रतिनिधियों के अनुसार वकीलों की एक बहुत बड़ी संख्या अपना भरणपोषण करने के लिये न्यूनतम उपार्जन करने में असमर्थ है। संगठित बार के प्रतिनिधियों ने भारत सरकार से अधिवक्ता कल्याण निधि स्थापित करने के लिये एक विधि के अधिनियमन के लिये अनुरोध किया।[23] भारत सरकार ने भारत के उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश और राज्य सभा के सदस्य

श्री बहिरुलइस्लाम की अध्यक्षता के अधीन एक समिति नियुक्त की। उस समिति ने निधि स्थापित करने की और उस निधि में धन जमा करने की सिफारिश करते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है। समिति ने एक माडल विधेयक भी तैयार किया है जो संसद् में प्रस्तावित किया जा सकता है। यदि यही वह सहायता है जो विधिक वृत्ति के सदस्य संसद् से चाहते हैं तो यह उनका भी बराबर कर्त्तव्य है कि ऐसी फीस विहित करने की, जिससे अधिक कोई भी व्यक्ति फीस प्रभारित नहीं कर सकता, संसद् की शक्ति को स्वीकार करें।

3.30 वादियों को सेवा देने के लिये विधिक वृत्ति के सदस्यों द्वारा प्रभार्य फीस की निम्नतम और अधिकतम सीमा विहित करने के प्रश्न के साथ निकट सहबद्ध प्रश्न वादियों के एक ऐसे वर्ग को, जो निम्नतम फीस देने में भी असमर्थ हैं, पूर्णतया निःशुल्क सेवा की व्यवस्था करने का है। संविधान के अनुच्छेद 39क के पीछे दर्शन को कार्योन्मुख कार्यक्रम के रूप में कार्यरूप देना होगा। यदि फीसों में निम्नतम और अधिकतम सीमाएं विहित भी कर दी जाती हैं तो भी हमारे समाज के कुछ ऐसे सदस्य होंगे जिन्हें न्याय से इन्कार भोगना पड़ेगा क्योंकि वे विधिक वृत्ति को संदेय फीस देने में असमर्थ हैं। फीस न्याय तक पहुंच में एक बाधा होगी। जब यह कहा गया कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए तो अनुच्छेद 39क उनको दिया गया एक वचन था। यदि न्याय की तलाश करने वाले ऐसे व्यक्ति जो निम्नतम फीस भी नहीं दे सकते आर्थिक निर्योग्यता के कारण न्याय से इन्कार भोगेंगे तो यह अनुच्छेद 39क का उल्लंघन होगा। अनुच्छेद 39क के पीछे आशय को प्रभावी रूप देने के लिये न्याय की तलाश करने वालों को सेवा की व्यवस्था करने के लिये विधिक वृत्ति को सक्रिय होना होगा। विधिक वृत्ति सभी प्रयोजनों के लिये प्राइवेट सेक्टर में है। चिकित्सा वृत्ति भी प्राइवेट सेक्टर में है किन्तु जनता के लिये निःशुल्क लोक अस्पताल भी स्थापित किये गए हैं जहां कोई भी व्यक्ति बिना कोई फीस दिये चिकित्सा सेवा ले सकता है। अतिनिर्धन व्यक्तियों की ऐसे अस्पतालों तक पहुंच हो सकती है। दुर्भाग्य से विधिक वृत्ति में अभी तक कोई पब्लिक सेक्टर नहीं है। संगठित विधिक वृत्ति का यह कर्त्तव्य और बाध्यता है कि वह अपना पब्लिक सेक्टर यूनिट स्थापित करे जहां उसके सदस्यों की सेवाएं उन दीन व्यक्तियों के लिये उपलब्ध हों जो उनकी सेवाओं के लिये फीस नहीं दे सकते। भारत सरकार द्वारा संचालित विधिक सहायता स्कीम कुछ सीमा तक इस निमित्त सहायक है। फिर भी विधिक वृत्ति के सदस्यों द्वारा संचालित पब्लिक सैक्टर क्लिनिक स्थापित करने के लिये ठोस उपाय करने होंगे जहां ऐसा कोई व्यक्ति, जिसे आवश्यकता है और वह प्राइवेट सैक्टर की फीस नहीं दे सकता, जा सके और न केवल सलाह ले सके बल्कि न्याय पाने के लिये कार्यवाही भी आरंभ कर सके। यह एक ऐसा उपाय है जिसकी बहुत पहले से आवश्यकता है और यह कार्य विधिक वृत्ति को अपने हाथ में लेना चाहिये। कुछ सीमा तक इससे जिम्मेदारी की समस्या का समाधान होगा।

3.31 इससे हम अपनी जांच के अंतिम चरण पर पहुंच गए हैं। इसमें दर्शित दृष्टिकोण का प्रवाह वृत्ति के एकाधिकारक स्वरूप से होता है। यदि, जैसा पहले कहा गया है, जिम्मेदारी एकाधिकार के दुरुपयोगों पर एक रोक है तो वृत्ति की सामाजिक लेखापरीक्षा एकाधिकार के संभावित दुरुपयोगों पर निश्चित ही एक रोक होगा। यह आवश्यक है कि हम यह स्पष्ट करें कि सामाजिक लेखापरीक्षा क्या है। यह पद समाजशास्त्रियों द्वारा प्रचलित किया गया है और अब भी प्रचलित है जब वृत्तियों के समाजशास्त्र की परीक्षा की जाती है। विधि आयोग इसका उपयोग सीमित रूप से करता है। जैसा पहले बताया गया है विधिक वृत्ति के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी व्यथित वादी द्वारा शिकायत इस भय से बहुत कम देखने में आएगी कि कुलीन व्यक्ति के न्याय के सिद्धांत से आरोप की जांच स्वयं अपराधी वकील के सह-व्यवसाइयों द्वारा अनुज्ञात होगी। सामाजिक लेखापरीक्षा ऐसे निकाय द्वारा की जानी चाहिये जिसमें विधिक वृत्ति के सदस्यों की प्रबलता निहित न हो। और प्रभावी होने के लिये लेखापरीक्षा ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले निकाय द्वारा की जानी चाहिये जो अन्यथा व्यथित होने का दावा करें। दो संस्थाएं वृत्ति की सामाजिक परीक्षा प्रभावी तौर पर संयुक्त रूप से कर सकती हैं। एक निकाय न्यायपालिका के सदस्यों का है जो सारा दिन विधिक वृत्ति के सदस्यों के साथ सीधे व्यवहार करते हैं। और दूसरा निकाय न्याय के उपभोक्ताओं का है। उन्हें पता है कि दोष कहां है। इसलिये विधि आयोग की यह राय है कि विधिक वृत्ति के गलती करने वाले सदस्यों और संपूर्ण वृत्ति की सामाजिक लेखापरीक्षा अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में पर्याप्त उपबंध सम्मिलित करके, कानून द्वारा गठित ऐसे निकाय द्वारा की जानी चाहिये

जो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों और न्याय-उपभोक्ताओं से मिलकर बनेगा। ऐसा तरीका करना होगा जिससे न्याय के उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व हो। गठन उन व्यक्तियों से होना चाहिये जिन्हें न्यायालय में जाना पड़ा हो और उनसे विधिक वृत्ति के सदस्यों द्वारा अनुचित बर्ताव किया गया हो। इसलिये यह बात विचार के लिये है कि विधिक वृत्ति व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से इसमें दर्शित निकाय द्वारा लेखापरीक्षा के अधीन हो।

3.32 यदि इसमें दर्शित सभी कदम उठा लिये जाते हैं तो न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका की पूर्ण रूप से प्रशंसा की जाएगी और स्थिति में गुणात्मक और परिमाण रूप से अच्छा परिवर्तन होगा।

3.33 विधि आयोग तदनुसार सिफारिश करता है।

अध्याय 4

अभिस्वीकृतियां

4.1 न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका की जांच की गई है। यह दोहराया जाता है कि यह रिपोर्ट विधिक वृत्ति की भूमिका की सभी आयामों में जांच के संबंध में नहीं है। यह रिपोर्ट न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका की जांच करने के सीमित कार्य के संबंध में है। इसलिए रिपोर्ट की परिसीमाओं पर इस संदर्भ में विचार किया जाए और उसे समझा जाए।

4.2 विधिक वृत्ति बहुत वाक्युक्त है। यह अपनी आलोचना सहन नहीं कर सकती। यह आलोचना के प्रति अति चेतनाशील है। वास्तव में यह आलोचना का विरोध करती है। किसी भी पाठक को रिपोर्ट से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। इसलिए स्पष्ट रूप से यह विनिर्दिष्ट करना आवश्यक है कि इस रिपोर्ट के अध्याय 2 में अधिकथित वार्ता के अतिरिक्त इस रिपोर्ट को तैयार करने में विधि आयोग की सहायता श्री माधव मैनोन ने की जो बंगलौर स्थित विधि विद्यालय के निदेशक जो कई वर्षों तक भारतीय विधिज्ञ परिषद् न्यास के सचिव थे और जो अभी भी इंडियन बार रिव्यू के, जो भारतीय विधिज्ञ परिषद् न्यास की बात कहता है, सचिव हैं। दुर्भाग्य से श्री मेनोन ने उन्हीं विषयों पर अपनी विशेषज्ञीय राय दी जिनके संबंध में उन्हें चर्चा करने का समय मिला। दूसरी ओर डा० जे० एस० गांधी, समाज-शास्त्र आचार्य, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एक समाजशास्त्री के दृष्टिकोण से विधिक वृत्ति की भूमिका की एक विशेषज्ञ के रूप में जांच, विश्लेषण और मूल्यांकन करने के लिए विधि आयोग की सहायता करने के लिए अनुरोध किया गया। उन्होंने अपने निष्कर्षों से विधि आयोग की सहायता की। विधि आयोग डा० माधव मेनोन और डा० जे० एस० गांधी से प्राप्त सहायता को धन्यवाद सहित अभिस्वीकार करता है।

ह०

(डी०ए० देसाई)

अध्यक्ष

ह०

(बी०एस० रमादेवी)

सदस्य सचिव

नई दिल्ली

31 अगस्त, 1988

टिप्पण और संदर्भ

अध्याय 1

1. चौथे कामनवैल्थ विधि सम्मेलन की कार्यवाही, 11, भारतीय अधिवक्ता (1971) पृ० 89
2. मार्क गेलेन्टर और राबर्ट किडर संप. लायर्स इन डेवलपिंग सोसाइटीज, भारत के प्रति विशेष निर्देश से, 3 (2 और 3 विशेषांक) लॉ एंड सोसाइटी रिव्यू, 1968-69
3. डा० उपेन्द्र बख्शी, भारत में सामाजिक–विधिक अनुसंधान कार्यक्रम का वर्णन (आई० सी० एस० एस० आर० और प्रासंगिक लेख 12,75) जैसा श्री के० एल० शर्मा द्वारा लिखित विधि शास्त्र और विधिक वृत्ति की प्रस्तावना में उद्धरित किया गया है। (1984) पृ० (III)
4. डा० जे० एस० गांधी, वकील और दलाल : विधिक कृति के समाजशास्त्र का अध्ययन (1982) तथा विधि शास्त्र और विधिक कृति; भारतीय सेटिंग (1987) और टिप्पण 3 में वर्णित श्री के० एल० शर्मा।
5. लूडो रोचर 'लायर्स इन क्लासिकल हिंदू लॉ' 3 (2 और 3 विशेषांक) लॉ एण्ड सोसाइटी रिव्यू (1968-69) हालहैड के ए कोड ऑफ जेंटुलास से प्रोद्धरण 93 (1977) विविधार्णवस्तु नामक प्राचीन पाठ का अनुवाद पृ० 383-384
6. यू० सी० सरकार, हिंदू विधिक इतिहास में युग, 1958 पृ० 37 (लूडो रोचर यथोक्त में प्रोद्धरित)
7. ई० सी० आमांड, रूल्स ऑफ कलकत्ता हाईकोर्ट, 1940
8. सेमुअल स्कमियनर, "ए स्केच ऑफ डेवलपमेंट ऑफ दि लीगल प्रोफेसन इन इंडिया" देखें टिप्पण 2 पृष्ठ 337 और 343 पर
9. भारत सरकार, विधि मन्त्रालय की अखिल भारत बार समिति की रिपोर्ट में मूल अधिनियम से प्रोद्धरित, 1953, पृ० 9
10. ईस्टर्न बुक कंपनी द्वारा संपादित चैलेंज टु दि लीगल प्रोफेसन, लॉ एण्ड इन्वेस्टमेंट इन डवलपिंग कंट्रीस (1984) पृ० 4 पर नई दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय बार संगम के 19वें द्विवार्षिक सम्मेलन में भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति श्री वाई० बी० चन्द्रचूड़ के अभिभाषण से प्रोद्धरित
11. न्यायमूर्ति वी० आर० कृष्ण अय्यर द्वारा प्रोद्धरित, जस्टिस एंड बियोंड पृ० 20
12. न्यायमूर्ति वी० आर० कृष्ण अय्यर द्वारा प्रोद्धरित, ए कांस्टीट्यूशनल मिस्लेनी, पृ० 179
13. यथोक्त
14. 1970 में अमेरिकन विधिज्ञ परिषद् के समक्ष अपने अभिभाषण में वारन बर्जर, "दि स्टेट ऑफ जुडिशयरी—1970" 56 (अक्तूबर) ए ई ए जनरल, पृ० 929

अध्याय 2

1. तारीख 7-2-1988 के हिन्दुस्तान टाइम्स में कृष्ण महाजन, "लीगल पर्स्पेक्टिव"।
2. 11-2-1988 के स्टेट्समेन में अनिल राणा
3. 12-11-1987 का हिन्दुस्तान टाइम्स
4. डा० उपेन्द्र बख्शी, दि क्राइसेस ऑफ इंडियन लीगल सिस्टम (1982) पृ० 75
5. 22-8-1988 के हिन्दुस्तान टाइम्स का संपादकी

6. 24-8-1988 का हिन्दुस्तान टाइम्स

7. भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 1987-88, पृ० 31

8. विधि और न्याय मंत्रालय के राज्य मंत्री का अतारांकित प्रश्न सं० 303 तारीख 29-7-1988 का राज्यसभा में उत्तर

9. भारत के विधि आयोग की, उच्चतम न्यायालय एक नई दृष्टि, 125वीं रिपोर्ट, 1 पृ० 9

10. दिल्ली उच्च न्यायालय के अपर रजिस्ट्रार द्वारा दिए गए आंकड़े

11. उदाहरणार्थ महाराष्ट्र विधिज्ञ परिषद् बनाम एम० वी० डभोलकर अखिल भारतीय रिपोर्टर 1975 उच्चतम न्यायालय 2092, पी० जे० रतनम बनाम बी० डी० कणिकराम, अखिल भारतीय रिपोर्टर, 1964, उच्चतम न्यायालय 244, वी० सी० रंगदुरै बनाम डी० गोपालन, अखिल भारतीय रिपोर्टर, 1979, उच्चतम न्यायालय 281 और एम० वीरभद्र राव बनाम टेक चंद, 1984 उच्चतम न्यायालय मामले अनुपूरक 571

12. इस पहलू के विश्लेषण के लिए भारत के विधि आयोग की मुकदमेबाजी का खर्चा पर 128वीं रिपोर्ट की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है।

अध्याय 3

1. चार्ल्स ए० रीच, दि ग्रीनिंग ऑफ अमरीका, मार्क, एच० मकार्मक द्वारा उद्धरित दि टेरिबल ट्रुथ अबाउट लायर्स (1987) पृ० 34

2. यथोक्त, प्रस्तावना, पृ० 9

3. भारत का संविधान अनुच्छेद 39क

4. टी० के० ऊमेन "दि लीगल प्रोफेशन इन इंडिया : सम सोशियोलाजिकल पर्सपेक्टिव्ज एन० आर० माधव मेनोन संप; दी लीगल प्रोफेशन, ए प्रिलिमिनरी स्टडी ऑफ दि० तमिलनाडु बार (1984) पृ० 3

5. यथोक्त, पृ० 4

6. डा० जे० एस० गांधी वकील और दलाल : विधिक वृत्ति के समाज-शास्त्र का अध्ययन पृ० 33

7. भारत का विधि आयोग, 14वीं रिपोर्ट, जिल्द 1, पृ० 556

8. नरोत्तमक दास एल० शाह बनाम पटेश मगनभाई रेखा भाई और एक अन्य 1984, गुजरात ला हैरल्ड 687

9. मार्क एच० मकार्मक द्वारा दि टेरिबल ट्रुथ अबाउट लायर्स में यथा प्रोद्धरित अब्राहम लिंकन प्रस्तावना से पहला पृष्ठ

10. एस ज एण्ड एम एम प्राइस लिमिटेड बनाम मिल्नर (1966) 1 साप्ताहिक ला रिपोर्टर 1235

11. इस विषय के इस पहलू पर व्यापक चर्चा के लिए विधि आयोग को नगरीय मुकदमेबाजी न्याय-निर्णय के विकल्प के रूप में मध्यकता पर 129वीं रिपोर्ट देखें, पैरा 5.14

12. विधि और न्याय मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा अतारांकित लोकसभा प्रश्न सं० 2561 तारीख 12 अगस्त, 1988 का उत्तर

13. यथोक्त टिप्पण 4, प्रस्तावना में प्रोद्धरित

14. इस पहलू के पूर्ण वर्णन के लिए विधि आयोग की न्यायिक अधिकारियों का प्रशिक्षण पर 117वीं रिपोर्ट देखें

15. यथोक्त टिप्पण 11, पैरा 5.6 और 5.7 देखें

16. यथोक्त, पैरा 3.21 और उपाबंध 5

17. यथोक्त, पैरा 3.21 से 3.29

18. अकादशी पधान बनाम उड़ीसा राज्य (1963) अनुपूरक, 2 उच्चतम न्यायालय रिपोर्टर 691

19. वृत्तियों की जिम्मेदारी पर भारत के उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश ओ० चिन्ना रेड्डी, 14(4) इंडियन बार रिव्यू, 1987 पृ० 624

20. यथोक्त, पृ० 623-624

21. यथोक्त, भारत के उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी० आर० कृष्ण अय्यर, पृ० 658

22. उदाहरणार्थ, यू० एस० एस० आर० और जर्मन लोकतंत्रात्मक गणराज्य,

23. उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश राज्य अधिवक्ता कल्याण निधि ।

उपाबंध

भारत का विधि आयोग

उपाबंध 1

न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने के लिए विधिक वृत्ति की भूमिका पर प्रश्नावली

प्रस्तावित न्यायिक सुधार आयोग के लिए तैयार किए गए निर्देश निबंधन विधि आयोग को सौंपे गए थे। न्यायिक सुधारों का अध्ययन करने के संदर्भ में एक निबंधन "न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने में विधिक वृत्ति की भूमिका" भी था। विधि आयोग इस निर्देश निबंधन के संबंध में कार्य करने के लिये उद्यत है। विधिक वृत्ति के भूमिका का जांच साधारण नहीं बल्कि न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने के लिए विभिन्न पहलुओं से करनी होगी। एक पहलू है : भारत में विधिक न्याय प्रणाली के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रवर्तन और उसे त्वरित करने के लिए विधिक वृत्ति क्या भूमिका निभा सकती है। वांछित सामाजिक परिवर्तन संविधान में यथा परिकल्पित समानता पर आधारित समाज बनाने की दिशा में है।

विधिक वृत्ति की संस्था पुरातन है। इसकी वर्तमान संरचना और रूपविधान राजकाल में हुआ है। 1857 में महारानी की उद्घोषणा के अनुसरण में क्राउन ने भारत शासन की सीधी जिम्मेदारी संभाल ली जिससे तीन मुख्य नगरों में उच्च न्यायालय स्थापित किए गए, इंगलिश बैरिस्टर और सिलिसिटर भारत में आ गए और उनके प्रशिक्षण और परंपरा द्वारा विधिक न्याय प्रणाली को ब्रिटिश प्रतिरूप मिला। बैरिस्टर प्रास्थिति के प्रतीक समझे जाने लगे। कई भारतीय बैरिस्टर बनने के लिए युनाइटेड किंगडम गए और उन्होंने ब्रिटिश प्रशिक्षण और संस्कृति तथा परंपरा अर्जित की और भारत में देशी विधि वृत्ति को ब्रिटिश प्रतिरूप में परिवर्तित कर दिया। वृत्ति में विभाजन सालिसिटरों, बैरिस्टरों के अनुसार था। निस्संदेह अंग्रेजी भाषा के ज्ञान और ब्रिटिश न्याय प्रणाली से संपर्क के कारण उस समय के कुछ बैरिस्टरों ने स्वतन्त्रता आंदोलन में भाग लिया और मार्ग प्रदर्शकों की भूमिका निभाई। किन्तु स्वतन्त्रता के आगमन पर भारत में विधिक वृत्ति उपनिवेशवादी विधिक न्याय प्रणाली की सेवा करने से स्वतंत्रता उन्मुख संविधान के अधीन शासित किए जाने वाले लोकतंत्रात्मक भारत के लिए उपयुक्त प्रणाली में अपने आपको परिवर्तित करने में असफल रही। वृत्ति राजकाल की अप्रचलित और पुरानी विधिक विरचनाओं पर डटी रही और इस प्रयोजन के लिये कोई आफ अपील और हाउस आफ लार्डस उनके प्रेरणा स्रोत बन गए। यह बहुत सीमा तक वर्तमान कलेश का कारण बने इसका प्रदीप्तिमान कारण यह है कि अति विद्वत सर्वोत्तम समाज के लिए उपयुक्त प्रणाली निरक्षरता और निर्धनता के उच्च प्रतिशत वाले समाज के लिये प्रभाव नहीं हो सकती है।

शिक्षा के प्रसार के साथ अधिक लोक विधिक वृत्ति[1] में आ गए और समय के साथ यह लाभदायक बन गई। इसका परिणाम यह है कि सेवा का अंश पूर्णतया समाप्त हो गया है और वृत्ति पूर्ण रूप से लाभोन्मुख बन गई है। सभी अवांछनीय प्रवृत्तियां असंदिग्ध रूप से वृत्ति में आ गई हैं।

प्रत्येक संस्था को उस समाज में, जिसमें वह कार्यशील है परिवर्तन लाने के लिए सामाजिक रूप से उपयोग होना होता है। शक्तिशाली वाचक संस्था होते हुए विधिक वृत्ति की भूमिका की जांच संविधान के लक्ष्यों की प्राप्ति में इसकी सहायता के संदर्भ में की जानी है। अन्य लक्ष्यों के साथ अति महत्वपूर्ण लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था की जाएगी।

यह एक तर्कपूर्ण बात है कि क्या विधिक सहायता आन्दोलन, स्वैच्छिक और राज्य समर्थित दोनों; विधिक वृत्ति द्वारा अपनी सामाजिक बाध्यताओं का उन्मोचन करने में असफलता के कारण अस्तित्व में आया। इस बात पर आपत्ति नहीं की जा सकती कि न्याय की तलाश में बहुत लोक वकील को संदाय करने के लिए साधनों के अभाव के कारण न्यायालय की अधिकारिता का आश्रय लेने में असफल रहे। विधिक वृत्ति स्वरूप में और कार्यकरण में एकाधिकारक है और अब यह जांच करनी आवश्यक है कि क्या एकाधिकार की बुराईयां वृत्ति में आ गई हैं। यह अलोचना के लिए नहीं बल्कि समाधान निकालने के लिए अंतरावलोकन के आशय से है।

विधि आयोग का प्रस्ताव प्राथमिक रूप से न्याय प्रशासन प्रणाली को शक्तिशाली बनाने के लिए विधिक वृत्ति की भूमिका की जांच करने के लिए है। विधि आयोग कई संबद्ध विषयों पर भारत की विधिक

परिषद् और राज्य स्तर पर अधिक परिषदों से संपर्क स्थापित किए हुए है। ये निकाय संगठित बार के संस्थागत रूप विधान का प्रतिनिधित्व करते हैं। किंतु संपूर्ण समाज विधिक वृति की भूमिका में हितबद्ध है। अन्याय से पीड़ीत भारत के कई लाख लोग न्याय के उपभोक्ताओं का सबसे बड़ा निकाय है और उन्हें अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया जाए। उन्हें विधिक वृति के विरूद्ध विभिन्न प्रकार की शिकायत हो सकती है। कई समर्थक संगठन सक्रियक, समाजिक कार्य मुकदमेबाजी के समर्थक और कई अन्य व्यक्ति ऐसे हैं जो विधिक वृत्ति की भूमिका का विश्लेषण, जांच और मूल्यांकन करने में उपयोगी योगदान कर सकते हैं। विधि आयोग इस छोटी सी प्रश्नावली का उत्तर देने के लिए उनसे अनुरोध करता है और वार्ता में भाग लेने के लिए उन्हें आमंत्रित करता है। विधि आयोग निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर में हितबद्ध है :

1. क्या उन लोगों की जिन्हें विधिक वृत्ति से व्यवहार करना होता है। यह तीक्ष्ण भावना वैध है कि विधिक वृत्ति अपने विलंबकारी, अतिविस्तृत, तकनीकी और प्रारूपिक दृष्टिकोण के कारण न्याय के मार्ग में अड़चन, अवरोध और बाधा है ?

2. विधिक वृत्ति का एक मुख्य कार्य न्याय करने में सहायता करना है। क्या यह सत्य है कि वर्तमान वृत्ति इससे दूर चली गई है और इसकी वर्तमान भूमिका स्पष्ट रूप से प्रत्युत्पादक है।

3. विधि सामाजिक इंजिनीयरी का उपकरण है। इसके दो अंग न्यायपालिका और विधिक वृत्ति हैं। और स्पष्ट रूप से लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उनकी एक दूसरे के प्रति भूमिका पूरक है। क्या यह सत्य है कि पूरक होने के स्थान पर संगठित बार और न्यायपालिका के बीच एक प्रकार की विरोधी स्थिति विकसित हो गई है ?

4. यदि अंतिम प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है, तो आप विधिक वृत्ति द्वारा आवर्ती हड़ताल का निर्धारण और मूल्यांकन कैसे करेंगे ?

5. हड़ताल का सिद्धांत औद्योगिक संबंधों के संसार से आया। इसमें यह नियम है कि वह जो दूसरे से बातचीत करने और उनकी आशाएं पूरी करने की स्थिति में है ऐसा करने में असफल रहता है और सीधी कार्यवाई से न्याय और समानता के व्यवहार की कल्पनाओं के अनुसार कार्य करने को बाध्य किया जाता है, यदि यह धारणा विधिमान्य है तो विधिक वृत्ति द्वारा न्यायालय से अनुपस्थित रहकर हड़ताल अधिकतम दशाओं में सफलता के व्यवहार और न्याय की कल्पनाओं को सम्मिलित करने में सहायक नहीं हो सकती, क्योंकि हड़ताल बाह्य कारणों में जैसे जहां किसी दूरतर नगर में पुलिस और वकीलों में झगड़ा हो गया और राजधानी में बार के सदस्यों ने हड़ताल कर दी ? क्या बार के सदस्यों के लिए अपने इस विश्वास के समर्थन में हड़ताल करना उचित है कि न्यायापालिका क कार्यरत एक सदस्य के साथ सरकार ने अनुचित वर्ताव किया है ? क्या अंततोगत्वा बार द्वारा उत्सुकता से चाही जाने वाली न्यायपालिका की स्वतंत्रता की क्षति नहीं होगी ? यदि हां तो किस प्रयोजन के लिए और किस न्यायोचित्य से ?

6. बार के ज्येष्ट सदस्यों द्वारा न्यायाधीश का पद स्वीकार करने में उनकी अनिच्छा के बारे में आपकी क्या राय है ?

7. यदि उन कारणों को, जैसे कृषि संबंधी सुधारों का विरोध, बैंक राष्ट्रीकरण का विरोध, निजी थैली को समाप्त करना और उनसे संबद्ध बातें, देखा जाए, तो क्या विधिक वृत्ति की भर्त्सना नहीं होगी कि यह समाज में संविधान में यथापरिकल्पित परिवर्तन की दिशा के मार्ग में अड़चन डालती है ?

8. यदि वास्तव में समसामयिक विधिक वृत्ति लोगों की दृष्टि में गिरी है, तो किस प्रकार गिरी है ? सामाजिक रूप से फायदाप्रद विधान के अधीन स्थापित अधिकरणों और न्यायालयों में वकीलों के उपस्थिति के लिए उपभोक्ताओं के आन्दोलन का कैसे मूल्यांकन करेंगे ?

9. देश में विधिक वृत्ति की खो गई गरिमा और सम्मान को वापस लाने के लिए क्या किया जा सकता है ? कई कदमों में, जिनकी इस प्रयोजन के लिए सिफारिश की जाए, क्या हम विद्यमान

अधिवक्ता अधिनियम में कुछ छोटे या बड़े उपांतरणों के बारे में भी विचार कर सकते है ? या क्या हम वर्तमान अधिनियम के स्थान पर नए अधिनियम के बारे में विचार कर सकते हैं ? यदि हां तो, इसकी साधारण रूपरेखा क्या हो सकती है ?

10. क्या वृत्तिक निकायों को, जैसे भारत की विधिज्ञ परिषद् या राज्य विधिज्ञ परिषद् अपनी नामावली में वकीलों को वर्तमान रीती से "प्रविष्ट" करने तक सीमित रखना चाहिए ? क्या उन्हें विनिर्दिष्ट मानक अधिकथित नहीं करने चाहिए जिनका वकील गरीब और निर्धन मूवक्किलों की बाबत अनुसार करें ?

11. पहले बार के सदस्यों पर अनुशासनिक अधिकारिता उच्च न्यायालय में निहित थी। कुलीन व्यक्ति द्वारा न्याय की मांग से अधिवक्ता अधिनियम में एक उपबंध जोड़ा गया जिससे उच्च न्यायालयों की अधिकारिता समाप्त कर दी गई तथा राज्य और राष्ट्रीय स्तर तक विधिज्ञ परिषद् की अनुशासनिक समिति में निहित कर दी गई। क्या इससे स्थिति में सुधार हुआ है ? क्या भारत के उच्चतम न्यायालय को अधिवक्ता अधिनियम की धारा 38 के अधीन अपील मात्र संतुलन रखने के लिए पर्याप्त है ?

12. (i) बार के सदस्यों और न्यायपालिका ,

(ii) बार के सदस्यों और अभियोजन अधिकारियों ले बीच अभिकथित मैत्री और घनिष्ठता को दबाने या उस पर रोक लगाने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए ?

13. क्या एक और वृत्तिक निकायों और दूसरी ओर राज्य नीतिज्ञ और राजनीतिज्ञ दलों के बीच संघर्ष को रोकना आवश्यक है ?

14. क्या फीसों की एक मानक सूची रखना वांछनीय है जिसके अनुसार फीसें मुवक्किलों से प्रभारित की जाएं ? यदि हां तो ये कैसे निर्धारित की जाएं ? ये कैसे प्रवर्तित की जाएंगी ?

15. वृत्तिक कारबार के एकाधिकार स्वरूप को कम करने के लिए संभवत : क्या किया जा सकता है ? क्या बार के ज्येष्ठ अधिवक्ताओं और उनके बीच जो सापेक्षत: कनिष्ठ है , मामलों के भार के वितरण के लिए कुछ मानकों की बाबत विचार करना संभव है ?

16. क्या अब अवसर नहीं कि ऐसी प्रणाली तैयार की जाए जिसके द्वारा देशीवादी न्यायालयों और अधिकरणों के समक्ष स्वंय उपस्थित होने की स्थिति में हो और उनकी सहायता स्वैच्छिक अभिकरणों और पराविधिक निकायों द्वारा की जाए ?

उपाबंध 2

उन व्यक्तियों/निकायों की सूची जिन्होंने प्रश्नावली के उत्तर दिए।

1. उच्च न्यायालय

1. उड़ीसा उच्च न्यायालय
2. कर्नाटक उच्च न्यायालय

2. न्यायधीश

1. न्यायमूर्ति जयचंद्र रेड्डि, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय
2. न्यायमूर्ति वाई० यू० अंजनेलू, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय
3. न्यायमूर्ति एस० टी० रामलिंगम, मद्रास उच्च न्यायालय
4. न्यायमूर्ति एस० एम० दाऊद, मुम्बई उच्च न्यायालय
5. न्यायमूर्ति टिपनिस, मुम्बई उच्च न्यायालय
6. श्री संजीव दत्त प्रशिक्षणाधीन न्यायाधीश मोरेना, मध्यप्रदेश।

3. विधिज्ञ परिषद् विधिज्ञ संगम

1. श्री गोवर्धन पुजारी, सदस्य, सड़ीसा राज्य विधिज्ञ परिषद्
2. श्री के० ए० पालनी स्वामी, सदस्य, तमिलनाडु जिला विधिज्ञ परिषद्
3. श्री सतेंद्र नारायण दास, विधिज्ञ परिषद्, मधुबनी, बिहार
4. श्री जी० डी० पंडा सचिव, वकील संगम, पालीखेंमुंडी, जिला गंजम
5. श्री बी० सी० विस्वास, सचिव, शिलांग विधिज्ञ संगम
6. मुसबई विधिज्ञ संगम
7. अहमदाबाद विधिज्ञ संगम
8. बिहार राज्य विधिज्ञ परिषद्, पटना
9. विधिज्ञ संगम, मुज्जफरपुर, बिहार
10. महाराष्ट्र और गोवा विधिज्ञ परिषद्
11. पंजाब और हरियाणा विधिज्ञ परिषद्, चंडीगढ़ ।

4. अधिवक्ता

1. श्रीमति एम० शर्मा, अधिवक्ता, शिलांग
2. श्री कोका राघव राव, अधिवक्ता, हैदराबाद
3. श्री टी० वी० एस० दासु, अधिवक्ता, हैदराबाद
4. श्री आर० राम कृष्णय्या, अतिवक्ता, तेनाली, गुंटूर
5. श्री रामानंद राव, अधिवक्ता, तेनाली, गुंटूर
6. श्री आर० के० भट्ट, अधिवक्ता, अजमेर
7. श्री रंजीत डी चौधरी, अधिवक्ता, नागपुर ।

5. विद्वान

1. श्री डी० एन० सराफ, अहमदाबाद
2. श्री के० पी० सिंह महलावर, एम० डी० विश्वविद्यालय, रोहतक
3. श्री पी० सी० जुनेजा, एम० डी० विश्वविद्यालय, रोहतक
4. श्री ओ० पी० शुक्ल, भारतीब विधि संस्थान ।

6. स्वैच्छिक संगठन न्याय उपभोक्ता

1. श्री डी० बी० मेन, न्याय सुधान संगठन, सांगली, महाराष्ट्र
2. श्री एच० डी० शोरी, कामन काज़, नई दिल्ली
3. महिलाओं के लिए विधिक साहयता केन्द्र, नई दिल्ली
4. श्री आर० एन० वासुदेव, नई, दिल्ली
5. श्री हरीश उप्पल, नई दिल्ली
6. डी० एम० आई० फुरटाडो, गोवा ।

88-M/S782MofLJ&CA—400—3-9-90—GIPS.